सृष्टि संवत, विक्रम संवत,
आर्य समाज स्थापना दिवस
की हार्दिक शुभकामनाए

वर्ष २ अंक १८
विक्रम संवत् २०७७ फाल्गुन
मार्च २०२०

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते
रमन्ते तत्र देवताः
विश्व महिला दिन
08 मार्च

नूतनवर्षः आयुष्पूर्णः
सुरक्षितः च स्यात्

भारतीय नववर्ष

नव संवत्सर विक्रम संवत्

२०७७

की हार्दिक बधाई एवं

शुभकामनाएं

सृष्टि काल, जीवन विज्ञान और वेद उत्पत्ति के पावन दिवस सभी के लिए योग क्षेमकारी हो आर्य लेखक परिषद् सभी के सुखी होने और निरोग रहने की मंगल कामना करता है।

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

मार्च 2020

वर्ष—२ अंक—१८,
विक्रम संवत् २०७७
दयानान्दाब्द— १९६
कलि संवत् — ५१२१
सृष्टि संवत् —१,९६,०८,५३,१२१

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(९९६३९७०९४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
ए—११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली—११००४१
चलभाष— ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय

१ द्वन्द्वग्रस्त जीवन (सम्पादकीय)

२ वेदकाल निर्णय और आर्यों के निवास.....

३ The Four Ashramas

४ आर्यसमाज की स्थापना का महत्त्व

५ दंगे—फसाद की मानसिकता बनाता कौन है?

६ कोरोना से प्रभावित अर्थ व्यवस्था.....

७ महाभारतान्तर्गत चक्रवर्ती आर्य राजाओं.....

८ कहां है मेरा आर्यसमाज ? (कविता)

९ हो ली होली देश में (कविता)

१० क्रांतिकारी भगत सिंह

ईमेल — aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट — https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक — आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

द्वन्द्वग्रस्त जीवन

अनेकता में एकता, भारत विभिन्न संस्कृतियों का एक गुलदस्ता, नाना मजहब का संगम, मिली जुली संस्कृति वाला देश, रंग–बिरंगे और विभिन्न सुगंध वाले फूलों का चमन, गंगा जमुनी तहजीब इत्यादि वाक्य कहने और सुनने में तो बहुत अच्छे लगते हैं। किसी शायर ने भी बहुत खूब लिखा है –

चमन में इकतलाफे रंगो बू से बात बनती है।
हमीं हम हैं तो क्या हम हैं, तुम्हीं तुम हो तो क्या तुम हो।।

किसी चमन में जब तक अनेक रंग और भिन्न सुगंध के फूल नहीं होंगे तब तक वह चमन नहीं कहा जा सकता। परन्तु फूलों में और मनुष्यों में बहुत अंतर है। फूल भले ही एक चमन में एक साथ रह लें परन्तु मनुष्य नहीं रह सकते।

यद्यपि फूलों की परवरिश में यदि बागवान पक्षपात करता है तो फूल भी एक साथ नहीं रह पाते। जिन्हें अधिक सम्मान मिलता है वे लहलहाते हैं बाकी सूखने के लिए विवश हो जाते हैं। मनुष्यों को यदि साथ रहने का सही जीवन दर्शन नहीं सिखाया जाता और साथ रहने की तरबियत नहीं दी जाती तो वह एक साथ कदापि नहीं रह सकते न उनका एक समाज बन सकता है। मनुष्यों में अहंकार की प्रवृत्ति ऐसी होती है कि जिसको यदि संस्कारित न किया जाए तो वह विकृत हो जाता है और तब मनुष्य स्वयं के अतिरिक्त किसी को भी सहन नहीं करता। यह अहंकार नस्ल के रूप में, मजहब के रूप में, धन के रूप में, बल के रूप में, ज्ञान के रूप में सर्वत्र देखा जा सकता है। वैदिक जीवन में संस्कारों के द्वारा इसी अहंकार को संस्कारित करके सहिष्णु, क्षमाशील और उदार बनाए जाने का विधान है। विकृत अहंकार हिंसक, असत्यवादी, चौरप्रवृत्ति, व्यभिचारप्रिय, असंयमी और संग्रहखोर हो जाता है। इसके विपरीत संस्कारित अहंकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह परायण होकर मानवता का हित चिंतक और रक्षक बन जाता है। तब मनुष्य सच्चे अर्थों में सामाजिक हो पाता है। विकृत अहंकार के कारण समाज टूट कर बिखर जाता है और अनेक वर्गों और उप वर्गों में विभक्त होकर पारस्परिक द्वेष छल कपट और हिंसा का प्रवर्तक होकर मानवता का घोर शत्रु बन जाता है। यह मनुष्य को राक्षस बना देता है। तब लोग मिलकर नहीं रह सकते, चमन आबाद न होकर बर्बाद हो जाता है।

हमारे इस देश में ही नहीं समस्त संसार में ही इस विकृत अहंकार का बोलबाला है। संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी और परमेश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति होने का दम भरने वाला मनुष्य आज इसी विकृत अहंकार के कारण राक्षस और खूंखार पशु बन चुका है। लोग एक दूसरे से प्रताड़ित, पद दलित और शोषित होकर परस्पर घृणा, ईर्ष्या, द्वेष में भरकर युद्धरत हो चुके हैं। मानवी संसार में इस विकृत अहंकार और घृणा का द्वन्द्व परस्पर जारी है। यह मानवता को निगलने का प्रयास कर रहा है और मानवता कराहती हुई किसी नरसिंह वीर पुरुष की ओर आशा भरी दृष्टि से निहार रही है जो आकर दानवता के चंगुल से छुड़ाकर उसका सुखचैन वापस दिला सके। वर्तमान में हमारा भारत देश ऐसी ही स्थिति से गुजर रहा है। नस्ली अहंकार उच्चता का मिथ्या दंभ सबके सिर चढ़कर बोल दहाड़ रहा है। कोई मिलकर रहने को तैयार नहीं। सत्तासीन लोग आम जनता का स्वत्वहरण करने पर बेरहमी से आमादा हैं। लोगों की आजीविका छीनी जा रही है, प्रताड़न प्रबल हो रहा है। सरकारों और न्यायपालिका पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है, सर्वत्र भय व्याप्त है। देश में गृह युद्ध की संभावना बढ़ती जा रही है।

एक ओर सत्ताधीशों के दमनकारी बोल और व्यवहार, जबरन स्वत्वहरण, के रूप में उनके विकृत अहंकार और दूसरी ओर प्रताड़ित, शोषित, दलित आदिवासी और अल्पसंख्यकों की घृणा का द्वन्द्व स्पष्ट दिखाई दे रहा है। परन्तु सरकार की नीतियों का विरोध करने वाले लोग भी एक साथ नजर नहीं आते। सब आपस में बंटे हुए ईर्ष्या–द्वेष ग्रस्त हो रहे हैं। यद्यपि ऊपर से एक होने का दावा करते हैं परन्तु

दिल से सचमुच एक नहीं हैं। मजहबी बोल और परिधान नहीं छोड़ पा रहे। भीतर–भीतर इनके यहां भी अहंकार और घृणा का द्वन्द्व बरकरार है।

आवश्यकता इस बात की है की जात–पांत और मत मजहब की स्वार्थपूर्ण राजनीति को छोड़कर कोई साझा जीवन दर्शन सभी मिलकर बनाएं और उसका आदर करें। सबको यहीं इसी देश में रहना है। सरकारें सरमाएदारों उद्योगपतियों का ही भला न सोच कर आमजन के हित को दृष्टि में रखकर योजनाएं व कार्यक्रम निर्धारित करें। आम जनता को न्याय, सुरक्षा और आजीविका प्रदान करें। जनता अपनी सरकार पर विश्वास और गर्व कर सके ऐसा कुछ होना चाहिए तभी यह देश चमन बन सकेगा। अन्यथा मनुष्यों का बूचड़खाना ही बनेगा।कुत्तों, कौवों, चील, गिद्धों, गीदड़ों और भेड़ियों की भीड़ ही शेष रह जाएगी। दानवता दनदनाएगी और मानवता खून के आंसू रोएगी।

अब बाबा आदम के जमाने की कबीलाई सोच को छोड़ना होगा, स्वार्थ प्रधान झूठा इतिहास गढ़ना, अतीत में हुए अन्याय अत्याचारों की कहानियां दोहरा कर लोगों को आक्रोशित करके प्रतिशोध के लिए भड़काना बंद करना होगा। एक दूसरे के महापुरुषों को अपमानित करने से, धर्म ग्रंथों को जलाने से, पूजा स्थलों को क्षतिग्रस्त करने से, दंगे फसाद से कुछ भी लाभ न मिलेगा। भविष्य ही बिगड़ेगा। भावी पीढ़ी के दिल दिमाग में जहर मत घोलो। वर्तमान को प्रेम और सहानुभूति पूर्ण बनाने की सोचो। मनुष्य हो तो मननशील होकर विचार करो, हिंसक और क्रूर हृदय पशु और राक्षस मत बनो।

देखो, तुम सब परस्पर लड़ने में लगे हो और चालाक पूंजीपति तथा सत्ताधीश तुम्हारा सर्वस्व हरण करके तुम्हें स्वत्वहीन बनाने और कोरोना जैसे वायरस फैला कर तुम्हें नेस्तनाबूद करने में लगे हैं, तुम्हारे लिए जेल खाने बना रहे हैं, अपने बच्चों को विदेशों में पढ़ा कर ऊंचे पदों पर प्रतिष्ठित कर रहे हैं और तुम्हारे बच्चों को चाकू, छुरी, पिस्तौल और बम पकड़ा कर अपराधी बना रहे या फिर नशीले पदार्थों के व्यापार में फंसा कर उनका जीवन नष्ट कर रहे हैं। तुम समय रहते न चेते तो सब कुछ लुट जाएगा।

जब खजाना लुट गया, फिर होश में आए तो क्या।
वक्त खोकर दस्ते हसरत मलके पछताए तो क्या।।

अरे गाफिलो! एक हो जाओ मिलकर,
अगर मार गैरों की खानी नहीं है।

मानवता लुटती निरीह सी पिटती नित बदमाशों से।
कौन बचाएगा अब इसकी अस्मत लक्ष्मीदासों से।।

सब लोग मिलकर मानवता की रक्षा करो वर्तमान में आप सबका यही प्रमुख कर्तव्य है।

संसार के श्रेष्ठ पुरुषों एक हो।

– वेदप्रिय शास्त्री

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल / कंप्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

वेदकाल निर्णय और आर्यों के निवास के सम्बन्ध में अज्ञानता

– अखिलेश आर्येन्दु

पिछले अंक में वेदकाल और आर्यों के निवास स्थान के सम्बंध में कुछ विद्वानों, इतिहासकारों और गवेषकों के दृष्टिकोण के सम्बंध में समीक्षात्मक चर्चा की गई थी। समीक्षा में यह पता चला कि कुछ विद्वानों जिसमें महर्षि दयानंदादि को छोड़कर अन्य देशी–विदेशी इतिहासकारों, गवेषकों और विद्वानों ने अपनी मान्यता और धारणा के अनुसार वेदकाल और आर्यों के सम्बंध में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इससे विश्व समाज में वेदकाल और आर्यों के निवास स्थान के सम्बंध में एक झूठ, कल्पना, शरारत और षड्यंत्र का परिणाम –वेद अत्यंत छुद्र ग्रंथ हैं। इनमें कोई ज्ञान–विज्ञान, संस्कृति के उद्भव और उन्नायक तत्त्व और सत्य का समावेश अत्यंत अल्प है। इसी प्रकार आर्यों को एक विदेशी जाति मानकर उनके निवास स्थान, उनके रूप–रंग, धर्म, अध्यात्म, कला, साहित्य, भाषा, दर्शन और ज्ञान–विज्ञान के सम्बंध में अलाटप्पू और शरारत पूर्ण बातें लिखी गईं। मुसलमान आक्रांताओं ने भारतीय साहित्य के गौरवपूर्ण संस्थान, शिक्षा के विश्व प्रसिद्ध संस्थानों–जिसमें तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालय सम्मिलित हैं को नष्ट करने का महापाप किया था तो ईसाइयों की अंग्रेजी राजसत्ता ने भारत के इतिहास, ज्ञान–विज्ञान ग्रंथों, दर्शन, साहित्य, कला, संस्कृति का आदि को समाप्त–प्राप्य करने का षड्यंत्र और शरारत कीं। मैकाले की देखरेख में मैक्समूलर, कीथ, मैक्डानल जैसे अनेक अंग्रेज लेखकों ने वेद सहित अनेक ग्रंथों के मनमाने अर्थ ही नहीं किए, बल्कि सभी मर्यादाएं लांघकर इन्हें विकृत और बेकार सिद्ध करने के लिए सारी शक्ति लगा दी। परिणाम हमारे सामने है। भारतीय राजसत्ता प्राप्ति के 72 वर्षों में भारतीय जनों में अपने गौरव, गरिमा, मानवीय मूल्यों, सांस्कृतिक–धर्म के तत्त्वों के प्रति विपरीत भाव उत्पन्न हो गया। भारतीय इतिहास और दर्शन के लिए यह बहुत बड़ा आघात है। इसके लिए भारतीय राजसत्ता पर सबसे अधिक राजसत्ता भोगने वाली पार्टी और वामपंथी विचारक और इतिहासकार जिम्मेदार हैं। एक तरह से यह राष्ट्र, ज्ञान–विज्ञान, समाज, धर्म, कला, संस्कृति और भारतीय अस्मिता के प्रति अपराध और द्रोह–जैसा है। जो गलतियां हुईं, सो हुईं। यदि अब भी सुधार कर दिया जाए तो आने वाली पीढ़ियों में सत्य और गौरव का संदेश भारतीय इतिहास, संस्कृति, भारतीय धर्म, कला और अध्यात्म को समावेशित किया जा सकता है। प्रस्तुत अंक में इसी दृष्टिकोण से हम समीक्षा करेंगे।

–सम्पादक

ओरायन नामक ग्रंथ में वेदों की प्राचीनता के सम्बंध में लिखा है–''आर्य लोग और उनका धर्म ये दोनों हिमपूर्वकालीन हैं। उनका सत्यमूल तो अतिप्राचीन काल भूस्तर काल में घुसा हुआ है, अर्थात् वेद इतने प्राचीन हैं कि जैमीनी, पाणिनी और प्राचीन ब्रह्मवादियों ने जो उनका अस्तित्व जगत् के आरम्भ से माना है और उन्हें अनादि कहा है, वह स्वाभाविक ही है।' दूसरी तरफ मैक्समूलर द्वारा वेदों के समय निर्धारण का तर्क और प्रमाण (कल्पना, शरारत और षड्यंत्र) की समीक्षा निष्पक्ष की जानी चाहिए। विडम्बना ही कहा जाएगा कि मैक्समूलर और विदेशी विद्वानों व इतिहासकारों द्वारा लिखे गए इतिहास की समीक्षा कभी निष्पक्ष ढंग से (कुछ विद्वानों ने की लेकिन उसे महत्त्व नहीं दिया गया) की नहीं गई। ओरायन नामक ग्रंथ के लेखक की लिखी वेदकाल या आर्यों के सम्बन्धित ठोस विचारों का महत्त्व भी नहीं दिया गया।

इतिहास जो कल्पना के आधार पर लिखा गया

विदेशी विद्वानों और इतिहासकारों में प्रो. मैक्समूलर का नाम सर्वोपरि है। सबसे पहले हम देखते हैं कि भारतीय मनीषा और वैदिक वांग्मय के सम्बंध में मैक्समूलर की मानसिकता और कल्पना किस तरह की है। प्रो. मैक्समूलर अपनी पुस्तक History of Ancient Sanskrit Literature (प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास) जो 1859 में प्रकाशित हुई थी जो मानसिकता

संस्कृत साहित्य के प्रति व्यक्त किया है उसका सारांश इस प्रकार हैं–बौद्धमत ब्राह्मण–धर्म के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसलिए उससे पूर्व सम्पूर्ण वैदिक साहित्य की जिसमें संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् सबका समावेश है, सत्ता स्पष्ट है। यह सारा साहित्य बौद्धकाल अर्थात् 500 ईस्वी पूर्व अवश्य विद्यमान होना चाहिए। सूत्र–ग्रंथों का निर्माण 600–200 ईस्वीपूर्व के अन्दर हुआ। सूत्र–ग्रंथों की सत्ता स्पष्टयता सूचित होती है। ब्राह्मणग्रंथ में जिसमें पुराने और नये ग्रंथों का समावेश है और जिनमें अनेक पुराने ब्राह्मणकार शिक्षकों की लम्बी सूची पाई जाती है, 200 से कम वर्षों में नहीं बन सकते थे। इसलिए 800–600 ईस्वी पूर्व का समय हम ब्राह्मणग्रंथों के निर्माण का कल्पित कर सकते हैं। ब्राह्मणग्रंथों में मंत्रसंहिताओं के अस्तित्व का स्पष्ट निर्देश है अतः कम से कम 200 वर्ष का समय इन प्रार्थना गीत–संग्रहों की संहिता बनाने में लगा होगा। इसलिए 1000 से 800 ईस्वी पूर्व का वह समय माना जा सकता है जब इन संहिताओं का निर्माण हुआ। इन संहिताओं के निर्माण से पूर्व जिन्हें पवित्र यज्ञ विषयक गीतों और प्रामाणिक प्राचीन पुस्तकों का रूप प्राप्त हो चुका था, एक ऐसा समय माना जाना चाहिए जिसमें उन्हें लोकप्रिय धार्मिक गीत के रूप में स्वीकार किया जाये। यह समय 1000 ईस्वी पूर्व होना चाहिए। 200 वर्ष इस कविता के विकास में लगे होंगे, अतः 1200 से 1000 ई.पू. तक वैदिक कविता के प्रारम्भिक काल के रूप में माना जा सकता है।''

इसमें कुछ विशेष बिन्दुओं को समझना आवश्यक है। मैक्समूलर ने भिन्न–भिन्न कालों के लिए जो 200 वर्ष का समय रखा है वह उनके विचार में कम से कम था। उनका कभी यह विचार नहीं था कि उसे अंतिम और अधिकतम समझ लिया जाए। लेकिन उन्होंने अपनी एक अन्य पुस्तक **physical Religion : Gifford Lectures** जो सन् 1890 में प्रकाशित हुई थी, पृष्ठ 18 पर लिखा है– **We could not hope to be able to lay down any terminus a quo. Whether the Vedik hymns were composed in 1000 or 1500 or 2000 or 3000 years B.C. no power on earth could ever fix.** अर्थात् हम कोई अंतिम सीमा निर्धारण कर सकने की आशा नहीं रखते। वैदिक सूक्त 1000 ईस्वी पूर्व में बनाये गये, या 1500 ई.पू. में, 2000 ई. पू. में, या 3000 ई. पू. में,संसार में कोई शक्ति नहीं जो इसे निश्चित कर सके।

मेरे आर्ष क्रांति के पूर्व अंकों में लिख लेखों में वेदकाल को लेकर मैक्समूलर के समय निर्धारण की बात से यह एकदम भिन्न तरह का विचार है। प्रायः यह समझा जाता है कि मैक्समूलर ने वेदकाल का निर्धारण कर दिया है। पाश्चात्य विद्वानों ने वेदकाल का निर्धारण वेद के मंत्रों के आधार पर या ज्योतिष शास्त्र के आधार पर करने का प्रयास किया है। यहाँ यह समझने वाली बात है कि वेद मंत्रों या ज्योतिष शास्त्र के आधार पर भारतीय विद्वानों का वेदकाल निर्धारण ही जब प्रमाणिक और तर्कसंगत नहीं है तो विदेशी विद्वानों का समय निर्धारण कैसे प्रमाणिक हो सकता है? मेरा कहने का आशय यह है कि वेद मंत्रों के आधार पर वेदकाल का निर्धारण लगभग असम्भव है। पहले तो वेद को समझने के लिए वैदिक व्याकरण, भाषा, निरुक्त और साधना चाहिए और दूसरी बात वेद के प्रति अति पवित्र भाव का समर्पण चाहिए। क्योंकि वेद कोई मनुष्य–कृत पुस्तक नहीं है। आजतक किसी ने यह दावा नहीं किया कि वेद के सम्बंध में उनके विचार अंतिम हैं या वेद के अर्थ अंतिम हैं। विदेशी विद्वानों ने 'कल्पना' को वेदकाल का आधार बनाया। यहाँ यह विचार करने की बात है कि क्या वेदकाल को कल्पना के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है?? यह गीत परमात्मा के द्वारा ऋषियों के अंतःकरण में स्फुरित हुए।

पावगी महोदय ने भी वेदकाल निर्धारण किया। आप के अनुसार भूगर्भ शास्त्र से यह प्रमाणित होता है कि वेदों का काल कम–से–कम 24000 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। इन विद्वानों के अतिरिक्त कुमारा स्वामी, कपाली शास्त्री और श्रीपाद दामोदर सातवलेकर आदि वैदिक विद्वानों ने वेदों के काल निर्धारण किए हैं, लेकिन इसमें से किसी विद्वान् ने वेदों को सृष्टि के साथ उत्पन्न हुआ नहीं माना है।

विदेशी विद्वानों ने वेदों पर ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित किया। इसके पीछे एक कारण नहीं रहा। लेकिन कोई एक ऐसा कारण भी नहीं रहा जिससे कहा जाए कि विदेशी इतिहासकार और विद्वान् वेदों के प्रति अति श्रद्धा के कारण उन्होंने वेदों को अति महत्वपूर्ण मानकर, अपना सारा ध्यान केन्द्रित किया। हाँ, इतना अवश्य है कि विदेशी विद्वानों ने जब भारतीय वांग्मय की

प्रसिद्धि और लोक प्रियता के सम्बंध में सुना–जाना तो बाइबिल या दो–चार और पुस्तकों के अतिरिक्त कोई ऐसी पुस्तक उनके सामने नहीं दिखी जिसमें डूबकर वे ज्ञान–राशि प्राप्त करके सन्तुष्ट होते। मैक्समूलर के पूर्व अरबी, फारसी और कुछ अन्य विदेशी कवियों और विद्वानों ने वेदों के सम्बंध में अति सकारात्मक विचार व्यक्त किए हैं। लेकिन ईसाइयों ने अपने स्वार्थ, शरारत , षड्यंत्र और कल्पना का सहारा लेकर वेदों को बाइबिल और ईसाई संस्कृति से कमतर सिद्ध करने के उद्देश्य से संस्कृत भाषा, साहित्य, वैदिक वांग्यमय और अन्य ग्रंथों का अध्ययन किया। इसलिए वेद के सम्बंध में जो भी विचार करते हैं, वे विचार कहीं न कहीं दुराग्रह, कल्पना और आग्रह से पूर्ण लगते हैं।

विश्व इतिहास लिखने वाले और भारतीय इतिहास लिखने वाले दोनों अंग्रेज रहे हैं। इसके अतिरिक्त इतिहास लेखन के क्षेत्र में वामपंथी विचारधारा के इतिहासकार रहे हैं, जो अंग्रेज इतिहासकारों का अंधानुकरण करने वाले माने जाते हैं। यही कारण है कि अंग्रेज इतिहासकारों और वामपंथी इतिहासकारों की ऐतिहासिक–दृष्टि में कोई अंतर देखने को नहीं मिलता। मैक्समूलर ने भारतीय इतिहास लेखने में जो दृष्टि अपनाई थी वही दृष्टि वामपंथी विचारधारा वालों की भी देखी जाती है। वेदकाल के सम्बंध में मैक्समूलर और अन्य यूरोपीय इतिहासकारों की दृष्टि और उद्देश्य में एक समानता वामपंथी और अंग्रेज इतिहासकारों में द्रष्टव्य होती है। इसलिए वेद या अन्य वैदिक ग्रंथों के सम्बंध में वामपंथियों के द्वारा लिखे इतिहास को देखकर कोई आश्चर्य नहीं होता हैं।

कम से कम इतिहास जैसे सबसे गौरवपूर्ण कार्य को करने वालों को इतिहास को मिथ्या, शरारत , षड्यंत्र और कल्पना से बचाना चाहिए। वरना वह इतिहास तो नहीं होगा, भले ही कुछ और हो। मैक्समूलर और अन्य ईसाई इतिहासकारों के वेदकाल निर्धारण में कल्पना और शरारत को इतिहास के साथ नइंसाफी मानने वालों में बीवर, डॉ. विन्टर्नीज और डॉ. मॉरिस ब्लूमफील्ड प्रमुख हैं। 'बीवर' अपनी पुस्तक **History of Sanskrit Literature** में वेदकाल निर्धारण के सम्बंध में कहते हैं– **Any such attempt of defining the Vedik antiquity is absolutely fruitless p.7** अर्थात् ऐसा यत्न सर्वथा व्यर्थ है। वहीं दूसरी ओर डॉ. विन्टर्नीज़ लिखते हैं– "In reality, nothing more has been known than that the vedic period extends from an altogether underfind past to the fifth century before Christ. Neither the figures 1200 to 500, nor 1500 to 500, nor 2000 to 500, which are often to be met with in the popular account about the age of the Vedic Literature have any jhstification.The only date justifiable is **X** to 500 B.C., and as the result of the investigation of the last ten years it could be said that it is probable that in place of **500 B.C.** will have to besubstituted that **B. C.** ----We must however, guard against giving any definite figures, where such a possibility is, by the nature of the case, excluded" [**The Age of the Veda by Winternitz, P.10-11**]

अर्थात् वस्तुतः इससे अधिक और कुछ नहीं जाना गया कि वैदिक–काल का विस्तार एक सर्वथा अनिश्चित भूतकाल से 500 ई.पू. तक का है। 1200 ई.पू. से 500 ई.पू.ए या 1500 ई.पू. से 500 ई.पू.ए अथवा 2000 से 500 ई.पू. जो वैदिक साहित्य के विषय में लोकप्रिय वर्णनों में पाए जाते हैं सर्वथा न्यायसंगत व प्रामाणिक नहीं है। यदि कोई न्यायसंगत वा समर्थनीय तिथि हो सकती है तो वह है सर्वथा अनिश्चित भूत से 500 ई.पू. रखना पड़ेगा। किन्तु हमें कोई निश्चित अंक देने से बचना होगा जब कि यह विषय ही ऐसा है जिससे कोई निश्चित तिथि देने की सम्भावना ही नहीं।''

मैक्समूलर के वेदकाल निर्धारण से असहमति प्रकट करने वालों में पाश्चात्य विद्वान् डॉ. मॉरिस ब्लूमफील्ड का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। डॉ. ब्लूम फील्ड अपनी पुस्तक **Vedic Concordance कोष के संकलन में** वेदकाल के सम्बंध में लिखते हैं–

" I for my part, and I think I voice many scholars now much more inclind to listen to an early date, say 2000 B.C. for the beginning of Vedic literary production, and to a much earlier date for the beginning of the institution, and religious concepts which the Veda has derived from those pre-historic times which cast their shadows forword into the records that are in our hands.Anyhow, we

must not be beguild by that kind of conservativism which merely salves the conscience into thinking that there is better proof for any later date, such as 1500, 1200, or 1000 B.C. rather then the earlier date of 2000 **B.C.** , 'Once more frankly' we not know."
[Bloomfield's Religion of the Vedas, P .19]

ब्लूम फील्ड कहते हैं– मैं स्वयं अपना, तथा मैं समझता हूं कि मैं अनेक अन्य विद्वानों का प्रतिनिधित्व करता हूं, यह कहने में कि हम वैदिक काल के विषय में पूर्व की कोई तिथि मानने, उदाहरणार्थ 2000 ई.पू., अधिक झुकाव रखते हैं–कुछ भी हो, हमें इस प्रकार की अनुदारता के धोखे में नहीं आना चाहिए जो अपनी आत्मा को केवल सन्तुष्ट कर लेती है कि 1500, 1200, 1000 ई.पू. को मानने के लिए अपेक्षाकृत 2000 ई.पू. के अधिक अच्छे प्रमाण हैं।

इतना लिखने के पश्चात् डॉ. ब्लूम फील्ड अपने उपसंहार में कहते हैं–एक बार फिर यदि स्पष्टवादिता से कहना हो तो हम कहेंगे कि हम नहीं जानते।

इसके अतिरिक्त **Vedic Age** के लेखकों ने ब्लूम फील्ड के मत को स्वीकार किया, लेकिन मैक्समूलर की बातों का भी समर्थन करते हैं। इन अनेक विचारों की समीक्षा की जाए तो हम पाते हैं कि अनेक पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर की बातों का समर्थन करते हैं। उनका अपना कोई दृष्टि–कोण, विचार या अनुसंधान नहीं है जिससे वे कह सकें कि वेदकाल के सम्बंध में उनका अपना निष्कर्ष इस प्रकार है। स्वाध्याय और देशी–विदेशी विद्वानों की समीक्षा करते हुए हम पाते हैं कि कुछ विद्वानों को छोड़कर किसी विद्वान् ने गहराई में जाकर वेदकाल विषय पर विचार किया हो। एक बहुत लम्बा काल व्यतीत होने के बाद भी वेदकाल को लेकर संशय बना हुआ है। जो मैक्समूलर ने लिख दिया उसे चुपचाप आँख मूंदकर स्वीकार कर लिया गया। इसका प्रमाण इतिहास की पुस्तकों में किए गए वर्णन व वेदों पर दिए गए इतिहासकारों के अभिमत हैं।

दरअसल, वेदकाल के सम्बंध में कोई भी विचार स्थिर करने के पहले वेदों का सांगोपांग स्वाध्याय, साधना, निरुक्त पर अधिकार, वेद भाष्य और वेद–मंत्रों की गहराई से समझ होनी आवश्यक है। आज विश्व समाज में वेद–विद्या पर चर्चा न के बराबर होती है। अमेरिका सहित विश्व के अन्य देशों में वेद, वेद–भाषा और वेद–विज्ञान के सम्बंध में जो अनुसंधान हुए हैं, उन अनुसंधानों से मिले परिणामों को देखने से पता चलता है कि मैक्समूलर से लेकर जितने भी देशी–विदेशी विद्वान् या इतिहासकार हुए, उन्होंने वेद के सम्बंध में –काल निर्णय करने जैसे अन्य विषयों पर जो कुछ लिखा, वह न तो प्रमाणित है और न तो तर्कसंगत ही है। आज यदि अमेरिका ऋग्वेद को विश्व की सबसे प्राचीन पुस्तक कह कर पुराने सभी विचारों पर पानी फेर दिया हो तो इसे महर्षि दयानंद के वेद सम्बंधी विचार को ही पुष्ट किया गया है कि वेद सृष्टि–उद्भव के आदि ग्रंथ हैं। भारतीय अनुसंधान संस्थान ने वर्षों पूर्व ऋग्वेद को विश्व की सबसे प्राचीन पुस्तक माना था। अमेरिका के अनुसंधानकर्ताओं ने भी इस संस्था के निष्कर्षों की ही पुष्टि की। लेकिन अमेरिका के अनुसंधान के उपरान्त ही विश्व ने एक स्वर में कहना प्रारम्भ किया कि वेद विश्व मानव सभ्यता के सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं।

वेदकाल निर्णय को लेकर अब भी विश्व में अनुसंधान चल रहे हैं। उन्हीं अनुसंधानों के परिपेक्ष्य में कहा जाने लगा है कि ज्ञान, भाषा, साहित्य, विज्ञान, भूगोल, चिकित्सा, शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, धर्म, अध्यात्म सहित अनेक विद्याओं का परम पावन पवित्र ग्रंथ वेद सम्पूर्ण मानव सभ्यता के आदि ग्रंथ हैं। यही बात तो महर्षि दयानंद ने एक सौ पचास वर्ष पूर्व कही थी। इस अंक में इतना ही। अगले अंक में इस संदर्भ में अन्य दृष्टिकोणों से विचार किया जाएगा।

हे स्त्री ! तुम हमारे घर की प्रत्येक दिशा में ब्रह्म अर्थात् वैदिक ज्ञान का प्रयोग करो ।

हे वधू ! विद्वानों के घर में पहुंच कर कल्याणकारिणी और सुखदायिनी होकर तुम विराजमान हो ।

– अथर्ववेद १४.१.६४

THE FOUR ASHRAMAS

– Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

The Vedic System of Life comprises two twin principles of Four Varnas and Four Ashramas. The Four Varnas are for a perfect Society and the Four Ashramas for a complete Individual. These Ashramas are Brahmcharya, Grihastha, Vanaprastha and Samnyasa.

''आ समन्तात् श्रमोऽत्र इति आश्रमः''– The word आश्रमः has a combined meaning of two small words- 'आ' or 'Complete' and 'श्रमः' or 'Labour'. The complete labour means doing each & every hard work required, and refraining from each & every undesired action. This is all to make all human beings the 'Complete Men and Women.'

The world has innumerable kinds of living beings, i.e. human beings, birds, animals, water-animals, reptiles, insects etc. Among them, man has a different type of life as compared to other animals in more than one respects. First, man's is a Karmayoni. He lives to do several things. He has to acquire knowledge and a number of qualities like truth, justice, compassion, cooperation etc. He has to perform several duties to himself, to other beings and to God. On the contrary, the animals' is a Bhogyoni. They live to live only. They have no object of life. They just happen to live.

Secondly, man has a long sequence of learning. He has little knowledge at the beginning of his life; but with the passage of time he enriches himself with information, knowledge and wisdom. Animals do have knowledge, even more than human beings in several matters. They know how to walk, how to interact, how to swim, how to fight, how to choose their food, how to understand the signs of Nature, and many other things. They know these things without any schooling. Man comes to know all things through schooling and training. Animals also learn but they have their limitation. Man also has his limitation; but his learning is lofty like mountains and profound like oceans.

Thirdly, the human beings are quite different with animals in their behaviours with opposite sex. Animals have their instincts, and they behave accordingly. They have their relations, their matings, their seasons and their choices; but all these things as per the Mother Nature. On the other hand, men and women sometimes live like father and daughter, brother and sister, son and mother, husband and wife, master and maid,

teacher and taught, and sometimes like secular colleagues or Brahmcharis. They generally see the others well-clothed. Even their urinals are mostly separate. The human beings learn how to perform a relation well, how to observe the required chastity, how much to conceive, how to punish the evil-doers, etc.

Fourthly, men and animals are quite different in their behaviour with other creatures. It is almost certain what would happen between a cat and a rat, a dog and a dog, a lion and a deer, a snake and a mongoose, an ape and a monkey, and the like. But a man's behaviour is not certain. A man can kill a deer; another man can stake his life to save it. An Indian can hate all Pakistanis; another Indian can love the same. A man kills snakes; another man pets them. A lady can happen to trust an unknown person as compared to her real brother. There were persons who could give their lives for Rishi Dayanand, and there were persons who took his life. Here also, the animals' behaviour is almost natural, and the men's seldom natural.

Fifthly to sum up, the animals are not capable to think about God, the Master of Universe. That way all animals are similar. On the contrary, all human beings generally think about God; but they are different in their thoughts and ideologies. Some believe in the formless God, others in a formful, still others in no God. Even those who worship His idols, worship different idols, and do not accept the others' view. Also those who believe in The Formless, differ in their ways of worship. Some perform yajnas, others sit with closed eyes, still others never sit for a worship.

Thus we see that the human beings have to learn a lot about instincts, behaviours, restraints, duties, animals, human beings, Vedas and God. They also have to earn a lot in terms of money, cash and kinds. They have to actualise themselves. They also have to realise God. The Vedic Culture leads man to achieve the fourfold goal of life comprising Dharma, Artha, Kama and Moksha.

Hence, Vedic Culture has divided the life-span of man into four stages, and has named them as Four Ashramas, viz.,Brahmcharya,Grihastha,Vanaprastha and Samnyasa. These Ashramas are to make man a Complete Being. **********

जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाये ।

– सत्यार्थ प्रकाश
(तृतीय समुल्लास)

आर्यसमाज स्थापना दिवस पर विशेष

आर्यसमाज की स्थापना का महत्त्व

अब से एक सौ चौदह वर्ष पूर्व सन् १८७५ (संवत् १९३२ विक्रमी) में चेत्र शुक्ला प्रतिपदा को आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। अन्य इतिहासकार कदाचित् इस छोटी–सी घटना को उतना महत्त्व नहीं देते, जितना महत्त्व हमारी दृष्टि में दिया जाना चाहिए। इसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश इतिहासकार ऐतिहासिक घटनाओं को पाश्चात्य विद्वानों के दृ–ष्टिकोण से देखने के आदी हो गए हैं। खासतौर से अंग्रेजी भाषा में लिखने वाले इतिहासकार हिन्दी–प्रधान और राष्ट्रीयता–प्रधान आन्दोलनों को आँखों से ओझल करने के अभ्यस्त हैं ।

सन् १८५७ की राज्य–क्रान्ति के विफल कर दिए जाने के बाद देश में दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हुईं। शासकों ने तो उसके बाद अपना सारा जोर इस बात पर लगाया कि किसी तरह भारतवासियों को बौद्धिक और मानसिक दृष्टि से इतना गुलाम बना दिया जाए कि वे अंग्रेजों के राज को और अंग्रेजी को अपने लिए वरदान समझने लगें। दूसरी ओर राष्ट्रभक्त मनीषियों ने राष्ट्र को समाज–सुधार और राजनैतिक चैतन्य की दृष्टि से आगे बढ़ाने के लिए अनेक छोटे–मोटे आन्दोलन भी शुरू किये। इन आन्दोलनों को मुख्य रूप से ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज और देवसमाज नामक आन्दोलनों का नाम दिया गया। ये तीनों देश के बुद्धिजीवियों के द्वारा संचालित सुधारवादी आन्दोलन थे, परन्तु इनका क्षेत्र बहुत सीमित था। ब्राह्म समाज देश के पूर्वी भाग तक, प्रार्थना समाज देश के पश्चिमी भाग तक और देव समाज उत्तर भारत के बहुत थोड़े–से भाग तक सीमित होकर रह गए। ये आन्दोलन न केवल स्थान की दृष्टि से सीमित थे, अपितु अपनी विचारधारा और अंग्रेजी–शिक्षित बुद्धिजीवियों की विशेष मान्यताओं से बँधे होने के कारण जनसाधारण को प्रभावित करने में असमर्थ थे। ये आन्दोलन सामाजिक कुरीतियों के निवारण के लिए तो किसी हद तक सजग थे, परन्तु उनकी यह सजगता पश्चिमी विचारों से प्रभावित थी। इसीलिए वे भारतीय अस्मिता के सशक्त वाहन नहीं बन सके।

उक्त तीनों आन्दोलन आर्य समाज की स्थापना से पूर्व विद्यमान थे। प्रार्थना– समाज पश्चिमी भारत में ब्राह्म समाज का प्रतिरूप था। उसकी देखादेखी ही उत्तर भारत में देवसमाज पनपा।

लगभग उन्ही वर्षों में ऋषि दयानन्द भी भारत की तात्कालिक दुर्दशा से मर्माहत होकर तीव्र मानसिक मंथन से गुजर रहे थे। उनके मन में कैसा मंथन रहा होगा, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। जो व्यक्ति भरी जवानी में अहर्निश ज्ञान की खोज में देश के विभिन्न भू–भागों का परिभ्रमण करता रहा है, और उसके इस परिभ्रमण से ये न सघन वन छूटते हैं, न हिमाच्छादित पर्वत छूटते हैं और न ही संतप्त मरुस्थल छूटते हैं– उस अवधूत संन्यासी की मानसिक बेचैनी की कल्पना तो करिये। ***स्वामी रामकृष्ण परमहंस*** ने इस अवधूत संन्यासी से भेंट और साक्षात्कार के पश्चात् अपने हृदय का उद्गार इस रूप में प्रकट किया था – ***इस अद्भुत व्यक्ति से भेंट होने के पश्चात् मुझे तो ऐसा लगा जैसे कि इसके हृदय में दिन–रात राष्ट्रप्रेम की ज्वाला धधकती रहती है।*** यह उद्गार ऋषि की अन्तर–वेदना की एक झाँकी देने के लिए पर्याप्त है। सचमुच ही उस युग में इस अवधूत संन्यासी को छोड़कर कोई और ऐसा विद्वान, मनीषी और समाज–सुधारक दष्टिगोचर नहीं होता जो सचमुच ही दिन–रात राष्ट्र की दुर्दशा और परवशता से चिन्तित हो और उसको स्वतन्त्र तथा उसके अतीत गौरव के अनुकल उसे सर्वे–शिरोमणि देखने को लालायित हो।

किसी लक्ष्य के लिए लालायित होना अलग बात है, किन्तु उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोई रचनात्मक उपाय खोज पाना सहज नहीं होता। उस दुष्कर कार्य को सहज बनाने के लिए जो दृढ़ आधार हमें चाहिए– शारीरिक भी, बौद्धिक भी और मानसिक भी– वह उस युग के अन्य किसी नेता में दिखाई नहीं देता। ऋषि दयानन्द ने न केवल सकल देश का परिभ्रमण किया, जहाँ कहीं पता लगा कि अमुक विद्वान्, ज्ञानी और योगी विद्यमान है, उसकी सेवा में उपस्थित होकर निरन्तर

विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन किया और योग के विविध अंगों का अभ्यास किया, प्रत्युत साथ ही उस अद्भुत संन्यासी को इस प्रकार घूमते–घूमते देश की दुर्दशा का जो साक्षात्कार हुआ, उससे वह जिस रचनात्मक खोज में लगा था उसके लिए और अधिक व्यग्र हो उठा। ऊपर जिन आन्दोलनों की हमने चर्चा की है उन आन्दोलनों की वैचारिक और भारतीय अस्मिता–सम्बन्धी दुर्बलताओं का भी उसने पर्यालोचन किया और अन्त में अपने समस्त अभियान के परिणामस्वरूप उसने आर्यसमाज की स्थापना करके उसके माध्यम से अपना लक्ष्य प्राप्त करने का स्वप्न देखा।

न केवल स्वराज्य, प्रत्युत भारत के स्वधर्म, स्वभाषा, स्वसंस्कृति और स्वसाहित्य की पहचान ही आर्यसमाज की पहचान है। भारत जिस किसी माध्यम से अपने 'स्व' को, और अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को व्यक्त कर सके, वही तो उसकी अस्मिता है! उस अस्मिता का मूल वैदिक विचारधारा है जो सृष्टि के आदि से किसी न किसी तरह निरंतर प्रवाह के रूप में चलती चली आई है। ऋषि दयानन्द ने इस प्रवाह के उत्स के रूप में वेद को पहचाना और आर्यसमाजरूपी भवन की दृढ़ आधारशिला उसी अक्षय ज्ञाननिधि की शिला पर स्थापित की ।

सन १८५७ से लेकर सन् १८७५ तक का जो रिक्त स्थान है, उसकी सही पूर्ति का माध्यम यदि किसी ने सुझाया तो वे ऋषि दयानन्द थे और वह माध्यम भी **आर्यसमाज** था। आर्यसमाज का यह आन्दोलन किसी वर्ग–विशेष, किसी सम्प्रदाय–विशेष और किसी स्थान–विशेष से सम्बद्ध नहीं था, बल्कि यह सर्वथा असाम्प्रदायिक, विशुद्ध राष्ट्रीय, अखिल भारतीय मंच था जिसमें भारत के 'स्व की सही रूप में अभिव्यक्ति हुई थी। आर्यसमाज की स्थापना के दस वर्ष बाद सन् १८८५ में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई। परन्तु इस कांग्रेस को अखिल भारतीय मंच बनने में कम–से–कम ५० वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। कांग्रेस की स्थापना के ५० वर्ष बाद तक भी अगर राष्ट्र की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और शैक्षणिक चेतना का कोई एकमात्र सबसे सशक्त आधार था तो वह केवल आर्यसमाज ही था। सन् १९२० के पश्चात् कांग्रेस ने जो अखिल भारतीय मंच का रूप धारण किया, वह कथा अलग है और उसकी दिशा भी अलग है। परन्तु आर्यसमाज पहले स्वराज्य, और अब सुराज्य के लक्ष्य–माध्यम से भारत की अस्मिता को उजागर करने के लिए प्रतिबद्ध है। वह लक्ष्य अभी तक अप्राप्त है। एक तरह से कहा जा सकता है कि स्वराज्य–प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस तो लक्ष्यविहीन हो गई, इसलिए निरुपयोगी भी हो गई। परन्तु आर्यसमाज की चुनौतियाँ ज्यों–की–त्यों कायम हैं, जैसे परतन्त्र भारत में, वैसे ही स्वतन्त्र भारत में भी ।

हमारे बार–बार भारतीय अस्मिता की बात पर जोर देने से पाठक यह न समझे कि यह किसी संकुचित राष्ट्रवाद का प्रचार है, बल्कि भारतीय अस्मिता ही मानवीय अस्मिता की असली संदेशवाहिका है। इसलिए 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' को चरितार्थ करने के लिए सबसे पहले इकाई के रूप में हमें भारत को ही परीक्षण–स्थली बनाना पड़ेगा। इस महान् कार्य की पूति की आशा सिवाय आर्यसमाज के, किसी अन्य संस्थात्मक आन्दोलन से नहीं की जा सकती।

इस संदर्भ को समझे बिना आर्य समाज की स्थापना के महत्व को समझना कठिन होगा। **************

साभार – आर्य जगत् अप्रैल, १९८६ का सम्पादकीय

स्वर्ग – *जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है ; वह* ***स्वर्ग*** *कहाता है ।*

नरक – *जो विशेष दु:ख और दु:ख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है ; उसको* ***नरक*** *कहते हैं ।*

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

दंगे–फसाद की मानसिकता बनाता कौन है?

– सन्त समीर

मैं टीवी आमतौर पर नहीं देखता। परसों कई दिनों बाद देखा। दिल्ली के दङ्गों पर सवेरे एनडीटीवी पर रवीश कुमार की एक रिपोर्ट और शाम को जी–न्यूज पर सुधीर चौधरी की एक दूसरी रिपोर्ट। 'आजतक' भी खोला, पर वहाँ कुछ दूसरी चीज चल रही थी, जिसके जिक्र का यहाँ सन्दर्भ नहीं बनता। रवीश कुमार की रिपोर्टिङ्ग आमतौर पर मैं पसन्द करता हूँ, उनका समर्थन भी करता रहा हूँ, पर कल निराशा हाथ लगी। मैं सवेरे नौ बजे के बाद वाली रवीश जी की सिर्फ एक रिपोर्ट की बात कर रहा हूँ, इसलिए मेरी बात को सिर्फ वहीं तक सीमित करके देखें, क्योंकि हो सकता है कि उन्होंने दूसरी और तरह की कुछ बढ़िया रिपोर्टिङ्ग भी की हो। फिलहाल, रवीश की इस रिपोर्ट को शातिराना ढङ्ग की बेहूदा रिपोर्टिङ्ग कहूँगा। बॉडी लैङ्ग्वेज तक ईमानदार नहीं लग रही थी। ठीक इसके उलट, सुधीर चौधरी की रिपोर्टिङ्ग बढ़िया थी और यह सच को सच की तरह दिखा रही थी। इन दोनों को देखने के बाद यह समझने की कोशिश कर रहा हूँ कि कैसे एक तरफ एक साफ–सुथरा आदमी धीरे–धीरे किसी विचारधारा या निहित स्वार्थों की दलाली करता नजर आने लगता है, जबकि दूसरी ओर एक दूसरा दलाल की छवि वाला आदमी सचबयानी करता दिखाई देने लगता है।

रवीश कुमार ने दङ्गे की तीन घटनाओं का जिक्र किया। अच्छी बात कि इन तीनों ही घटनाओं में जिन लोगों ने एक–दूसरे की मदद की, उनमें हिन्दू–मुसलमान दोनों ही कौमों के लोग थे, पर अजीब बात कि इस पूरी रिपोर्टिङ्ग से कुछ ऐसे सङ्केत उभर रहे थे, जैसे कि दङ्गा करने वाले सिर्फ एक ही कौम के लोग रहे होंय जबकि सच्चाई कुछ और है। यह सच को गलत दिशा में मोड़ने की मंशा से बनाई गई रिपोर्ट लगती है। पत्रकारिता की यह गलीज मानसिकता कही जाएगी। पीत पत्रकारिता का यह एक और चेहरा है। ऊपर से सन्तुलन का भ्रम पैदा करना और भीतर से शातिरपना। सोचिए कि यह नेतागीरी है या पत्रकारिता? रवीश जी को कहीं इस बात का गुमान तो नहीं हो गया है कि मैग्सेसे ने उन पर शक करने की गुञ्जाइश खत्म कर दी है!

पत्रकारिता के बहाने दूसरे और सन्दर्भों को याद कीजिए और सोचिए कि दङ्गे–फसाद की मानसिकता बनाता कौन है?

उस दृश्य की कल्पना करके मैं सिहर जाता हूँ, जब दङ्गाई तोड़फोड़ के साथ स्कूली बच्चियों के कपड़े तक फाड़ देते हैं और उनकी देह नोचना चाहते हैं। यह भी सोचिए कि तेरह साल की एक बच्ची के अन्तःवस्त्र दङ्गा प्रायोजित करने के आरोपी एक पार्षद के घर मिलते हैं और नङ्गी लाश बगल के एक नाले से निकाली जाती है। क्या सिर्फ इस वजह से यह कम निन्दनीय हो जाता है कि इस शर्मनाक हरकत को अंजाम देने वाला आपकी पसन्द वाली धारा का है?

जो लोग दनाक से कह दे रहे हैं कि कपिल मिश्रा के गैरजिम्मेदाराना बयान की वजह से दङ्गा शुरू हुआ, वे समस्या का सरलीकरण कर रहे हैं। विचारधारा के बीमारों को तो खैर बहाना चाहिए कि कैसे दूसरी विचारधारा वालों को जिम्मेदार ठहरा दिया जाए। अगर ऐसा है कि कपिल मिश्रा के बयान के चलते दङ्गे शुरू हुए, तो और पहले आए कहीं और ज्यादा गए–गुजरे बयानों पर दङ्गे क्यों नहीं शुरू हुए? क्या किसी खास पक्ष के बयान ही दङ्गे के लिए जिम्मेदार होते हैं और दूसरे पक्ष के भड़काऊ बयानों से गुलाब के फूल झड़ते हैं? ये जनाब ओवैसी अपने सीने पर गोली खाने की हिम्मत दिखाकर कागज न दिखाने की कौन–सी धमकियाँ दे रहे थे? सोनिया गान्धी को सुना आपने? बुढ़ा गईं, पर राजनीति करनी नहीं आई। अब, इनका लूगा धोने में ही जिनको अपनी काबिलियत नजर आती है, उनसे भला क्या उम्मीद कर सकते हैं? राहुल गान्धी, प्रियङ्का गान्धी और काँग्रेस के दूसरे नेताओं के पहले भड़काऊ और बाद के नपुंसक बयान

भी क्या आपने नहीं सुने? ओवैसी की पार्टी ऑल इंडिया मजलिस–ए–इत्तेहाद–उल मुस्लिमीन के पूर्व विधायक वारिस पठान का वह बयान क्या आपने नहीं सुना, जिसमें उसने कहा था कि हम पन्द्रह करोड़ सौ करोड़ पर भारी पड़ेंगे? दिल्ली के मुख्यमन्त्री को महात्मा गान्धी की समाधि पर माथा रगड़ कर शान्ति फैलाते हुए क्या आपने नहीं देखा? अरे भाई, गान्धी की समाधि पर जाते हुए एक बार यह भी तो सोच लेते कि ऐसे समय पर खुद गान्धी होते तो क्या करते! यह ठीक है कि आपके पार्षद के घर में दङ्गे–फसाद के समान मिले तो आपने उसे पार्टी से निकाल दिया, पर अपने विधायक अमानतुल्लाह खान को क्या कहेंगे जो ताहिर हुसैन को क्लीन चिट देता फिर रहा है? यह भी सोचिए कि आनन–फानन में ताहिर हुसैन को फरार होने की जरूरत क्यों पड़ी? हालाँकि जो लोग इस एक पार्षद की वजह से आम आदमी पार्टी पर दङ्गे भड़काने का आरोप लगा रहे हैं, मैं उन्हें भी सही नहीं मानता। ऐसा कहने वालों को समझना चाहिए कि ऐसे अराजक तत्त्वों और अपराधियों की सङ्ख्या दूसरी पार्टियों में और ज्यादा है। एक–दो नेताओं की वजह से पूरी पार्टी को अपराधी मान लेना ठीक नहीं।

कुछ घरों में मिले फसाद के सामानों से अन्दाजा लगाना मुश्किल नहीं है कि तैयारी आनन–फानन में नहीं हो गई थी। यह बहुत दिनों से की जा रही थी। इसे भी महज संयोग मानना मुश्किल है कि अमरीकी राष्ट्रपति के आते ही दिल्ली दङ्गों की भेंट चढ़ गई। पहले भी कह चुका हूँ, फिर कह रहा हूँ कि इस शाहीन बाग के अहिंसक प्रदर्शन में ईमानदारी बस बीस फीसद है और शातिराना बेईमानी अस्सी फीसद। शाहीन बाग के जिन भी समर्थकों से मैंने एनआरसी और सीएए के खतरे पूछे, एक ने भी सही ढङ्ग से सन्तुष्टिदायक जवाब नहीं दिया। भविष्य के उन काल्पनिक खतरों की बात करते लोग दिखे, जिनका कोई सिर–पैर नहीं है। इनमें से ज्यादातर बेचारे मोदी–विरोध की बीमारी से ग्रस्त हैं। अलबत्ता, शङ्काएँ सही या गलत जैसी भी रही हों, जो महिलाएँ सचमुच ईमानदारी के साथ वहाँ डटी हुई थीं और तकलीफ उठा रही थीं, उनको मैं नमन करता हूँ।

मेरे मस्तिष्क में फिर गूँज रहा है कि दङ्गे–फसाद की मानसिकता बनाता कौन है?

दङ्गा भड़कने के तीसरे दिन मैं दफ्तर में था तो पत्नी का फोन आयाकृ''शाम को सँभल कर आना, पड़ोस के चौराहे पर अफरा–तफरी मची है। कट्टे, पिस्तौल निकले हैं और लोग दुकानें बन्द करके घरों में कैद हो गए हैं।'' समर्थन–विरोध, पुलिस–कचहरी के बीच से जिन्दगी गुजरी है, तो खुद के लिए भले कभी डरने की नौबत न आई हो, पर घर में बीवी–बच्चे हैं ही, तो मन भी आशङ्काओं–कुशङ्काओं से घिरता ही है। रात करीब साढ़े नौ बजे, घर से डेढ़ किलोमीटर पहले चौराहे पर जब दफ्तर की बस से उतरा तो मन में यही था कि ई–रिक्शा करके आज किसी दूसरे रास्ते से घर जाऊँगा। नजदीक आते ई–रिक्शे को हाथ देने की सोच ही रहा था कि मन अचानक बदल गया। पच्चीस–तीस बरस पहले के इलाहाबाद के दिनों के कुछ दृश्य याद आने लगे। यह वह दौर था जब विश्वविद्यालय की पढ़ाई के साथ–साथ सामाजिक काम भी जिन्दगी का हिस्सा बन गए थे। एक समय वह आया कि शहर में साम्प्रदायिक सद्भाव बिगड़ने का अन्देशा हुआ तो लोगों ने एक सङ्गठन बना लियाकृ इनसानी बिरादरी। मेरे जैसे तमाम नौजवान इससे जुड़कर जरूरत पड़ने पर सामाजिक समरसता कायम करने का काम करते। वैसे, मैं तब जुड़ा जब 'इनसानी बिरादरी' समाप्त होकर लोक स्वराज्य अभियान का रूप लेने लगा था। प्रो. बनवारीलाल शर्मा हमारे अगुआ थे। वरिष्ठ लोगों में रामधीरज, राजीव दीक्षित, डॉ. कृ ष्णस्वरूप आनन्दी, डॉ. ए. ए. फातमी, असरार गान्धी, सिविल लाइंस चर्च के फादर, प्रो. रघुवंश, प्रो. ब्रजेश्वर वर्मा, डॉ. सुचेत गोइन्दी जैसे इलाहाबाद के तमाम बड़े नाम हमारे साथ जुड़े थे। कालान्तर में यही 'लोक स्वराज्य अभियान' 'आजादी बचाओ आन्दोलन' बना, जिसके प्रखर वक्ता स्वर्गीय राजीव दीक्षित को तमाम लोग यूट्यूब पर आज भी बड़े मनोयोग से सुनते हैं।

हमारा तरीका यह था कि दङ्गे–फसाद की आशङ्का पैदा होते ही हम पढ़ाई–लिखाई छोड़कर संवेदनशील मुहल्लों में दौड़ पड़ते थे। ऐसे इलाकों के बुजुर्गों–नौजवानों की बैठकें बुलाई जातींय साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखने के लिए अलग–अलग मुहल्लों के लिए अलग–अलग समूहों को जिम्मेदारियाँ बाँटी जातींय शान्ति जुलूस निकाले जाते। ठीया हमारा गान्धी भवन हुआ करता था। ऐसे भी समय आए, जब

अराजक तत्त्वों ने सद्भाव बिगाड़ने की भरपूर कोशिशें कीं और तनाव इतना बढ़ा कि लोग घरों में कैद हो गए। इनसानी बिरादरी के लोग जान जोखमि में डालकर ऐसे इलाकों में जाते थे, लोगों से संवाद स्थापित करते थे और जरूरत के सामान घरों तक पहुँचाते थे। इलाहाबाद के लोगों ने इनसानी बिरादरी को इतना मान तो दिया ही कि देश के दूसरे कोनों में भले ही दङ्गे भड़के हों, पर इस शहर में उस दौर में कभी दङ्गे नहीं भड़के। उसी दौर की तपस्या है कि आज इतने बरस बाद भी कभी इलाहाबाद जाता हूँ और किसी भी इलाके के किसी भी मुहल्ले से गुजरता हूँ तो अचानक कोई व्यक्ति रास्ता रोककर हालचाल पूछने लगता है या किसी छज्जे से स्वागत में कोई हाथ हिलता हुआ दिखाई पड़ जाता है। वे दिन भला कैसे भूल सकता हूँ, जब ईद पर सेवइयाँ खाने के इतने न्योते होते कि हम देर रात को ही घर लौट पाते। इस बात से मैं इतना ही समझ पाता हूँ कि जो लोग खुद को समझदार समझते हैं, अगर वे विचारधाराओं की जिद से बाहर निकल सकें तो अपने आसपास को थोड़ा और बेहतर बना सकते हैं।

यह सवाल फिर कौंध रहा है कि दङ्गे–फसाद की मानसिकता बनाता कौन है?

खैर, इस उधेड़बुन में मैंने तय किया कि डेढ़ किलोमीटर का घर तक का सफर मैं पैदल ही तय करूँगा और मुहल्ले के बीच से होकर ही। मानता हूँ कि ऐसा फैसला खतरनाक हो सकता है। आपकी जरा–सी लापरवाही आपकी जान ले सकती है, पर मन में यह बात तेजी से गूँज रही थी कि चलो चल के देखा भी जाए कि इस बीस–तीस साल के कालखण्ड में हम पूरे ही अराजक हो गए हैं या हममें सामने वाले को सुनने का कोई धैर्य बचा भी है। सन्नाटे और छिटपुट की आवाजाही के बीच आखरि घर मैं सही–सलामत पहुँचा। कोई अनहोनी नहीं हुई। लेकिन सावधान! यह कोई बहादुरी का काम नहीं है। पर्याप्त मूर्खतापूर्ण है। ऐसे खतरे उठाने की सलाह किसी को नहीं दे सकता, पर मेरी मानसिकता ऐसी ही है, तो मैं यही कर सकता था। घर के दरवाजे तक पहुँचते–पहुँचते उन समझदार लोगों की रोज–रोज की आपसी बहसें याद आ रही थीं, जो पूरे जोश में इस या उस व्यक्ति अथवा इस या उस पार्टी को ऐसी परिस्थितियों के लिए दोषी ठहरा देने में अपनी समझदारी की जीत महसूस कर रहे थे।

फिर वही बात कि दङ्गे–फसाद की मानसिकता बनाता कौन है?

जड़ें नहीं तलाशेंगे तो टहनियाँ और फुनगियाँ कब तक छिनगाते रहेंगे? आजादी मिली तो उस समय भी बँटवारे के मुद्दे पर मारकाट मची ही थी, फिर भी कुछ बात थी कि मुसलमानों की एक बड़ी आबादी ने पाकिस्तान जाने से इनकार कर दिया कि वह हिन्दुस्तान में अपने हिन्दू भाइयों के साथ रहकर ही प्रेम की दुनिया बनाएगी। जज्बा था और हिन्दू–मुसलमान दोनों राष्ट्र–निर्माण के लिए तैयार थे। गान्धी ने कहा कि आजादी मिल गई, काँग्रेस की भूमिका खत्म हुई और अगर किसी को राजनीति करनी हो तो अलग नाम से अपनी पार्टी बनाए। दिक्कत यहीं से शुरू हो गई। गान्धी को दरकिनार कर काँग्रेस का नाम जिन्दा रखा गया और इसके नाम पर राजनीति की जाने लगी। जिस जनता को लोकतन्त्र के लिए शिक्षित किया जाना था, उसकी दिशा मोड़ दी गई या उसे असंस्कारित रखा गया। जो लोग समझते हैं कि काँग्रेस ने इस देश पर सबसे लम्बे समय तक इसलिए शासन किया कि उसने काम अच्छे किए थे, तो इसे मैं उनकी भूल ही कहूँगा। सच्चाई यह है कि इस देश का मानस आजादी की लड़ाई की वजह से काँग्रेस के साथ शुरू से ही जुड़ा हुआ था और वह तमाम किन्तु–परन्तु करके भी उसे जिताती आ रही थी। जनता के दिमाग में बहुत दिनों तक यह बात चस्पाँ रही कि यह वही काँग्रेस है, जिसने देश को आजादी दिलाई। इलाहाबाद में मेरे मकान मालिक रहे बेहद नेक किस्म के इनसान शुक्ला जी महज इसीलिए काँग्रेस को वोट देते आए थे कि वे शुरू से उससे जुड़े थे और देश की आजादी में उसके योगदान के लिए उसे ही जिताना अपना कर्तव्य मानते थे। सोचिए कि काँग्रेस भङ्ग कर दी गई होती और राजनीतिक पार्टी का नाम कुछ और होता तो क्या नेहरू के बाद इन्दिरा गान्धी के प्रधानमन्त्री बनने की कोई नौबत कभी आ भी पाती? परिदृश्य से लगातार गायब होते गए लोहिया, कृपलानी, डॉ. नरेन्द्रदेव वगैरह को क्या आप उसी रूप में देख रहे होते, जिस रूप में आज देख रहे हैं?

निष्कर्ष बस इतना है कि कॉंग्रेस ने राष्ट्र–निर्माण की पहली जिम्मेदारी ली, पर वह जनता को राष्ट्र–निर्माण के संस्कार देने में बुरी तरह विफल रही। किसी बच्चे को चार–छह बार अभ्यास करा दीजिए कि बेटा, जब भी कुछ खाना तो अपने पास बैठे बच्चे से भी एक बार जरूर पूछ लेना कि उसे भी भूख तो नहीं लगी है....तो जिन्दगी भर के लिए पड़ोसी का खयाल करके चलने की उसकी आदत बन जाती है। सोचिए कि सद्भाव के साथ रहने की शिक्षा क्या सचमुच इतनी मुश्किल थी? लेकिन क्या कर सकते हैं, जब सत्ता में बने रहने के लिए समाज को जातियों–वर्गों में बाँटे रहना और सद्भाव के नाम पर तुष्टीकरण करते रहना जरूरी लगता हो! इतना भी समझ में नहीं आया कि मैकाले वाली जिस शिक्षा से अँग्रेजों ने देश तोड़ने का काम किया, उसी को अपना कर आखरि कैसे हम देश को सही रास्ते पर ले जा पाएँगे! हमारे शिक्षा संस्थानों से जो बुद्धिजीवी निकल रहे हैं, उनकी दिशा और दशा कैसी है, जरा गम्भीरता से सोचने की जरूरत है। असली काम तो शिक्षा–व्यवस्था या कहें कि संस्कार–व्यवस्था पर करने की जरूरत थी, जिस पर ध्यान ही नहीं दिया गाय। कॉंग्रेस ने एक ऐसी रेखा बनाई, जिस पर ही बाद की सभी पार्टियाँ चलती रहीं। राम मन्दिर–बाबरी मस्जिद हो, धारा 370 हो, खालिस्तान हो, असम–विवाद हो, नक्सलवाद हो... सोचिए कि ये सब किसके पाले–पोसे हुए मुद्दे हैं और क्यों?

बात यह कि अब कॉंग्रेस को भी दोष देते रहने का क्या फायदा? बहुत दिनों बाद ही सही, जनता ने उसे सबक सिखा दिया है। मौका तो अब मोदी जी को मिला है कि वे राष्ट्र निर्माण का काम करें। वे उस पार्टी का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो भारत की महान् सांस्कृतिक विरासत का वारिस बनने की जुगत में लगी रहती है। यह बुरा भी नहीं है, पर उस महान् विरासत को समझिए तो सही। रामराज्य का सपना देखने से रामराज्य नहीं आ जाएगा। रामराज्य लाना है तो वह करना पड़ेगा, जो रामराज्य में होता था। प्रेम बाँटिए, हर तरफ। दुश्मनों में भी। दुबारा पढ़ लीजिए कि रामराज्य में राम ने लक्ष्मण को राज्य के लिए क्या जिम्मेदारियाँ दे रखी थीं और कि उनके दरबार में समाज के आखरी आदमी का भी उतना ही महत्त्व था, जितना कि बड़े–से–बड़े व्यक्ति का। गान्धी के रामराज्य की कल्पना ऐसी ही थी। बजरङ्गदलिया बचकानी हरकतों से देश नहीं बनता, बल्कि ओवैसी जैसों को राजनीति चमकाने का मौका मिलता है। मुझे बचपन के वे दृश्य याद आते हैं, जब गाँव में गरीब मुसलमानों के समूह आते थे और हम हिन्दुओं के परिवार उन्हें इस बात के लिए दान–चन्दा देते थे कि वे अच्छे से हज की यात्रा पर जा सकें। साम्प्रदायिक सद्भाव के सूत्र क्या आपको यहाँ नहीं दिखाई देते? अगर कुछ मुसलमान गुट यह सोचते हैं कि वे एक दिन इस देश को इस्लाम के रङ्ग में रँग देंगे, तो उन्हें भी अपनी सोच बदल लेने की जरूरत है। आँखें खोलिए और देखिए कि जिन भी देशों को आपने इस्लामी राष्ट्र बनाया, वे सब लगातार नर्क बनते गए हैं। अरब के कुछ देश थोड़े रहने के काबिल हैं, तो इस्लाम नहीं, बल्कि तेल से मिली समृद्धि की वजह से। क्या आपको इतना भी नहीं समझ में आ रहा है कि स्वर्ग या जन्नत का रास्ता मारकाट और नफरत के बजाय हमेशा प्रेम या मोहब्बत से होकर ही गुजरता है। कुरान की उन व्याख्याओं को सामने लाने की जरूरत है, जिनको अमल में लाकर हर तरह के धर्म–मजहब के साथ सद्भाव से रहने की सम्भावना बेहतर बनती है। आत्मविश्लेषण का मुद्दा है कि भारत के गाँव–गिराँव, नगर–कस्बों में जहाँ हिन्दुओं की आबादी बहुत ज्यादा है और मुसलमानों की बहुत कम, वहाँ मुसलमानों की सुरक्षा को आमतौर पर कोई खतरा नहीं पैदा होता, पर जहाँ मुसलमान आबादी बहुत ज्यादा है और हिन्दू आबादी कम, वहाँ जरा भी तनाव पैदा होने पर हिन्दू खुद को सुरक्षित महसूस नहीं कर पाते। जरा सोचिए कि आखरि क्यों अफगानिस्तान जैसे देशों से हिन्दू पूरी तरह से भगा ही दिए गए। इसी देश में कश्मीर को भी देख सकते हैं।

मैं फिर सोच रहा हूँ कि विचारधाराओं (सम्प्रदाय भी विचारधारा है) के प्रति यह कैसी प्रतिबद्धता, जो जीवन को नर्क बनाती है? आप हिन्दू हों, मुसलमान हों, ईसाई हों, समाजवादी हों, साम्यवादी हों या कोई और वादी हों...क्या ऐसा नहीं लगता कि विचारधाराओं के प्रति जितनी ही प्रतिबद्धता होगी, फसाद की मानसिकता को उतना ही बल मिलेगा। जिनकी विचारधारा में हिंसा जायज है, वे मौका देखते ही मारकाट की ओर बढ़ेंगे,

तो दूसरी धारा वाले दूसरी तरह से फसाद को जन्म देंगे। याद रखने की बात है कि यह देश अपने अतीत में विचारधाराओं के प्रति प्रतिबद्धता वाला देश नहीं रहा है। यह सच की खोज वाला देश रहा है। सच की तलाश के लिए लोग सन्न्यास तक ले लिया करते थे। जो सच पकड़ में आता था, उसे जनता के सामने रखते थे। बात समझ से परे हो, तो 'नेति नेति' कहकर आगे बढ़ जाते थे। संवाद की परम्परा थी। शास्त्रार्थ पूरे जोश में हो सकता था, पर जोर–जबरदस्ती अपनी बात मनवाने की कोई जिद नहीं। 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' की बात हो, तो लड़ने–भिड़ने की कोई गुंजाइश भला हो भी कैसे सकती थी? लक्ष्य सच की तलाश हो तो अपनी मान्यता थोपने की जिद का अहङ्कार अपने–आप तिरोहित होने लगता है। जिस विज्ञान की आज हम जय–जयकार कर रहे हैं, वह और कुछ नहीं, बस सच की तलाश की मनुष्य की एक यात्रा है। जो चीज जैसी है, उसे उसी रूप में जान लेना ही तो विज्ञान है! जरूरत विज्ञानमय होने की है। विवाद इसलिए नहीं होते कि दो और दो चार होते हैं, विवाद इसलिए होते हैं कि हम दो और दो को कुछ और साबित करने की कोशिश करते हैं। सोचिए कि आज की बुद्धिजीविता कहाँ खड़ी है!

जो दङ्गाई हत्याएँ करते हैं, वे तो अपराधी हैं ही, लेकिन क्या उनकी शिनाखत नहीं करेंगे, जो ऐसी हत्याओं का मानस बनाते हैं? उन्हें भी अपनी बीमारी को पहचानने की जरूरत है, जो दूसरी विचारधारा के लोगों द्वारा की गई इक्का–दुक्का अराजक घटनाओं पर आसमान सिर पर उठा लेते हैं और देश–समाज के लिए सबसे बुरे समय की घोषणा करने लगते हैं, पर अपनी विचारधारा के लोगों द्वारा की गई कई गुना ज्यादा अराजकताओं पर भी पहले आवरण चढ़ाने की कोशिश करते हैं और जब कोई रास्ता नजर नहीं आता तो बस यह कहकर बचने की जुगत करते हैं कि वे किसी भी तरह की अराजकता का समर्थन नहीं करते। सत्ता–व्यवस्था के रवैये पर भी प्रश्नचिह्न लगता ही है। प्रशासन थोड़ी–सी समझदारी दिखाकर ऐसे हालात पर आसानी से नियन्त्रण कर सकता है, पर उसमें भी लापरवाही बरतता है तो यह सोचने वाली बात है। दिल्ली दङ्गे में पुलिस के लिए तुरन्त हरकत में आना उचित था या ट्रम्प के जाने तक इन्तजार करना? यह कानून व्यवस्था सँभालने की कौन–सी शैली है? ऐसी स्थितियों में भी हमारे प्रशासन के सामने क्या कुछ इशारों पर नाचने की मजबूरी होती है और स्थिति को बदतर होने देना होता है?

और, बात फिर वही कि दङ्गे–फसाद की मानसिकता बनाता कौन है?

सात दशक पहले देश को आजादी मिली तो उस जश्न को मन की आँखों से देखने की कोशिश कर रहा हूँ और उस सबके बीच उस अधनङ्गे फकीर की छाया को महसूस कर रहा हूँ, जो इस जश्न में शामिल होने के बजाय नोआखाली के दङ्गों को शान्त करने की चिन्ता में तेज कदम हड़बड़ाते हुए भागा जा रहा है। यह सब सोचते हुए मेरा मन कर रहा है कि आज के सन्त–महात्माओं से भी यह सवाल पूछूँ कि जब देश में दङ्गे–फसाद का माहौल बनता दिखाई देता है तो आप कहाँ होते हैं? स्वामी रामदेव, रविशङ्कर जी, मोरारी बापू, सद्गुरु जग्गी वासुदेव वगैरह–वगैरह। इस देश में पन्द्रह लाख से ज्यादा तो सिर्फ हिन्दू–बौद्ध–जैन साधु–सन्त हैं। इस्लाम का झण्डा थामे हुए भी हजारों पीर–फकीर हैं। दङ्गे–फसाद की आशङ्का पैदा होते ही अगर दस–बीस साधु–सन्त भी पहुँच जाएँ तो मुझे नहीं लगता कि लोगों के दिल नहीं पसीजेंगे। रविशङ्कर जी पहुँचे भी तो तब, जब हर तरह का खतरा खत्म हो चुका था। क्या उन्हें भी मरने से कुछ ज्यादा ही डर लगता है? माना कि स्वामी रामदेव विदेश में योग सिखाने में लगे थे और आनन–फानन में नहीं आ सकते थे, पर पहले भी क्या कभी ऐसे समयों पर वे आगे आए हैं? बाकी के लाखों सन्तों ने किस मकसद से सन्तई की राह पर कदम बढ़ाया है? रोजी–रोटी के जंजाल से ऊपर उठ चुके हे सन्त–महात्माओ! परमात्मा ने आपको क्या सिर्फ प्रवचन देने के लिए आसमान से टपकाया है...और वह भी क्या सिर्फ उस समय के लिए, जब सब कुछ अच्छा–अच्छा चल रहा हो? आखरि असली सङ्कट के समय सद्भावना जगाने का काम कौन करेगा?

हे साधु–सन्तो! मैं नहीं कह रहा कि दङ्गों की जमीन बनाने में आपकी कोई भूमिका होती है, पर आप भी अपने दिल से जरा गहराई से पूछिए और सोचिए कि दङ्गे–फसाद की मानसिकता आखरि बनाता कौन है?

****

कोरोना से प्रभावित अर्थ व्यवस्था और आमजन

–अखिलेश आर्येन्दु

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वैश्विक महामारी घोषित करके दुनिया को इस नई जानलेवा बीमारी से बचाव का रास्ता अख्तियार करने को कहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने चेतावनी है कि जिस तरह से कोराना (कोविड–9) वाइरस फैल रहा है उससे अंतरराष्ट्रीय व्यापार, पर्यटन, खेल, शिक्षण संस्थानों, क्रूड ऑयल उद्योग, ऑटो मोबाइल उद्योग, फिल्म उद्योग और दवा उद्योग पर पड़ते असर से विश्व अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है। इसलिए दुनिया के सभी देशों को इसे अत्यंत गम्भीरता से लेना चाहिए और युद्ध स्तर पर इसके रोकथाम के लिए प्रयास करने चाहिए। गौरतलब है चीन में संक्रमण के कारण फैलने वाली इस बीमारी से सबसे ज्यादा चीन की अर्थ व्यवस्था पर असर पड़ा है, लेकिन दूसरे देशों में जिस तेजी के साथ इसका विस्तार हो रहा है, उससे उन देशों की अर्थ व्यवस्था पर असर पड़ना शुरू हो गया है। चीन की अर्थ व्यवस्था और वहां के जनजीवन पर सबसे ज्यादा असर पड़ा है। लेकिन दुनिया के जिन सौ से अधिक देशों में कोरोना का असर दिखाई पड़ रहा है वहां के उद्योगों पर भी दहशत की वजह से असर पड़ रहा है। वैश्विक बाजारों में गिरावट का दौर जारी है। निवेशकों में भी दहशत बढ़ रही है। दक्षिण कोरिया, इटली, ईरान, जापान, जर्मनी, ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, स्पेन जहां लोग इस बीमारी से मरे हैं, वहां के विभिन्न उद्योगों पर ही असर नहीं पड़ा है, बल्कि वहां के शिक्षण संस्थाओं, सरकारी और प्राइवेट ऑफिसों और पर्यटन उद्योग पर असर पड़ा है। हर दिन एक नए देश में कोराना पहुंच रहा है। इसलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन चिंतित है। चिंता इसलिए भी बढ़ रही है, क्योंकि इसका असर इंसान के जीवन–मरण के साथ–साथ उसकी रोजी–रोटी, छिनते रोजगार और उसकी कमाई पर पड़ रहा है। सामूहिक कार्यों, सामूहिक स्थानों और सामूहिक यात्रा करने पर भी रोक लगाई जा रही है। डर की वजह से लोग और सरकारें अधिक परेशान हैं। भारत सहित दुनिया के तमाम देशों में वहां के तमाम आयोजनों को निरस्त कर दिया गया है। चीन, इटली सहित अनेक देशों से आने–जाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।

कोरोना के कारण विश्व अर्थ व्यवस्था बदहाली की ओर जा रही है। आमतौर पर इसका बचाव करके इससे बचा जा सकता है, लेकिन बचाव वहां कारगर हो सकता है जहां उसके निर्वाह करने वाले लोग, बीमारी की गम्भीरता को समझते हों। चीन से फैली यह बीमारी भले ही भारत में महामारी का रूप न लिया हो लेकिन यदि बचाव के प्रति हर आदमी जागरूक नहीं हुआ तो, इसके चपेट में आने में आमआदमी को रोक पाना मुश्किल होगा।

केंद्र और राज्य सरकारें 31 जनवरी 2020 से कोरोना वाइरस के संक्रमण के फैलने न देने के प्रति जागरूक हो गईं हैं। भारत के शहरों में खासकर दिल्ली (एनसीआर), मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता और बंगलौर जैसे बड़े शहरों में लोगों में अधिक दहशत देखी जा रही है। केरल, तेलंगाना, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश सहित देश में अभी लगभग 108 मामले सामने आए हैं। राहत की बात यह है कि अभी किसी की मौत नहीं हुई है। लेकिन अर्थव्यवस्था पर असर धीरे–धीरे दिखाई पड़ने लगा है।

यूं तो कोरोना से अनेक क्षेत्रों पर असर पड़ा है, लेकिन फार्मास्यूटिकल उद्योग पर बहुत अधिक असर देखा जा रहा है। इसकी वजह है, दुनिया के तमाम मुल्कों का चीन में बने उत्पादों पर निर्भर रहना। भारत वैसे तो जेनेरिक दवाओं का उत्पादन करने वाला देश है, लेकिन दवा उत्पादन में इस्तेमाल होने वाले एपीआई का 80 प्रतिशत चीन से आयात करता है। चीन में निर्मित उत्पादों पर निर्भरता वाले देशों में अमेरिका, इग्लैंड, भारत और एशिया के अनेक देश हैं। जब से चीन कोरोना के संक्रमण के चपेट में आया है और वहां के औषधि उद्योगों पर ताले लटकने शुरू

हुए हैं, उससे भारत सहित दुनिया के तमाम देश चीन में बनने वाली दवाओं की कमी से जूझने लगे हैं। भारत सरकार ने लोगों को भरोसा जरूर दिलाया है, लेकिन यदि कोरोना का असर आगे तक इसी तरह चीन और दूसरे देशों में बना रहा, तो दवाओं की कमी से भारत सहित दुनिया के तमाम देशों में गम्भीर समस्या पैदा हो सकती है। गौरतलब है चीन से आयातित दवाएं भारत में निर्मित दवाओं से सस्ती पड़ती हैं। इस कारण भी दवाओं को लेकर लोगों को दो–चार होना पड़ सकता है। चीन में निर्मित पेनिसिलीन, दर्द निवारक ब्रूफिन और मधुमेह में इस्तेमाल की जाने वाली दवा अक्राबोस का एकाधिकार है। भारत में इन दवाओं की कमी से इनके दाम आम आदमी की पहुंच से बाहर हो सकते हैं। भारत में जिन दवाओं का निर्माण होता है, उनका कच्चा माल चीन से आता है। कोरोना की वजह से कच्चा माल आना लगभग ठप्प हो गया है, इस कारण कच्चे माल के दामों में भी उछाल देखा जा रहा है। कोरोना के बचाव में इस्तेमाल होने वाले गाऊन, मास्क और रिस्पिरेटर प्रोटेक्टिव डिवाइसेज जैसे पर्सनल प्रोटेक्टिव इक्विपमेंट (पीपीआई) चीन से आयात होने के कारण इनके दामों में बेतहांसा बढ़ोत्तरी हुई है।

पर्यटन से विश्व के तमाम देशों को अच्छी खासी आमदनी होती है। कोरोना के संक्रमण के बाद आधी दुनिया के देशों में इस उद्योग पर असर पड़ा है। सबसे ज्यादा असर चीन, इटली, कोरिया, भारत, अमेरिका और दूसरे पश्चिम एशिया के देशों पर पड़ा है। भारत में मार्च–अप्रैल में पर्यटन से सबसे ज्यादा विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है, लेकिन कोरोना से दिसम्बर से लेकर अब तक महज तीन महीने में ही 200–300 करोड़ रुपये से ज्यादा का नुकसान होने का अनुमान है। इसी तरह से ऑटोमोबाइल उद्योग पर असर पड़ा है। भारतीय कार निर्माताओं को 30 फीसद तक ऑटो पार्ट्स चीनी सप्लायर्स देते हैं। कोरोना के चलते चीनी कम्पनियों को जबरदस्त नुकसान उठाना पड़ रहा है और भारत में आटोमोबाइल उद्योग घाटे में जा रहा है।

चीनी उत्पादों पर जरूरत से ज्यादा निर्भरता के कारण भारतीय उद्योगों, भारतीय बाजार और आम लोगों को सस्ती चीजों की जगह मंहगी वस्तुएं जो भारत या दूसरे देशों में निर्मित हैं खरीदनी पड़ रही हैं। इससे स्वदेशी सामान खरीदने का भारतीयों को एक अवसर मिला है। साथ ही, इससे भारतीय कम्पनियों को फायदा भी हुआ है। लेकिन जिन उत्पादों को बनाने के लिए उनमें इस्तेमाल होने वाले कच्चे माल चीन से मंगाए जाते हैं, वे अब मिलने बंद हो गए हैं। इससे भारतीय कम्पनियां लोगों से अधिक दाम वसूल रही हैं। भारत सरकार के सामने आज सबसे बड़ा संकट मंहगाई को रोकना है। कोरोना के कारण मंहगाई तेजी से बढ़ रही हैं। एक बड़ी रकम कोरोना को रोकने में लगानी पड़ रही है। चीन से अब कोई भी उत्पाद मंगाया नहीं जा रहा है। इससे भारत से जो उत्पाद निर्यात किए जाते थे, वे भी अस्थाई रूप से रोक दिये गया हैं। इससे दो तरह का संकट बढ़ रहा है। पहला संकट, निर्यात से होने वाली आय बंद हो गई है और दूसरा संकट चीन से कच्चा माल न मिलने के कारण वे सभी उत्पाद मंहगे होते जा रहे हैं जिनकी मांग साल के बारह महीने बनी रहती है।

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

महाभारतान्तर्गत चक्रवर्ती आर्य राजाओं का परिचय

– प्रियांशु सेठ

आर्यजगत् के पुनरुद्धारक स्वामी दयानन्दजी सरस्वती अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में चक्रवर्ती राजाओं के विषय में मैत्र्युपनिषद् का प्रमाण उद्धृत करते हुए लिखते हैं– ''सृष्टि से लेकर महाभारतपर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। जैसे यहां सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, **वद्ध्र्यश्व**, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त और भरत सार्वभौम सब भूमि में प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाओं के नाम लिखे हैं वैसे स्वायम्भुवादि चक्रवर्ती राजाओं के नाम स्पष्ट मनुस्मृति, महाभारतादि ग्रन्थों में लिखे हैं। इस को मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियों का काम है।'' इन राजाओं का राज्य आर्यावर्त्त देश से लेकर समस्त भूमण्डल पर था। आर्यावर्त्त देश विद्या का आदिस्त्रोत होने हेतु आदिसभ्यता का प्रकाशक भी है। पश्चिमी विद्वानों में अत्यन्त प्रतिष्ठित ृलिंग (Maeterlinck) अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'Secret Heart' में लिखते हैं–

"It is now hardly to be contested that the source (of knowledge) is to be found in India. Thence in all probability the sacred teaching spread in to Egypt, found its way to ancient Persia and Chaldia, permitted the Hebrew race and crept in Greece and the south of Europe, finally reaching China and even America."

- Pg. 5

अर्थात् – अब इसपर विवाद की कोई गुंजायश नहीं कि (विद्या का) मूल स्थान भारतवर्ष में पाया जाता है। सम्भवतः वहां से यह शिक्षा मिश्र में फैली, मिश्र से प्राचीन ईरान तथा कालडिया (अरब देश) का मार्ग पकड़ा, यहूदी जाति को प्रभावित किया, फिर यूनान तथा यूरोप के दक्षिण भाग में प्रविष्ट हुई, अन्त में चीन और अमरीका में पहुंची।

फ्रांस के महान् सन्त एवं विचारक क्रूजे (Cruiser) ने बलपूर्वक लिखा है–

"Is there is a country which can rightly claim the honour of being the cradle of human race or at least the scene of primitive civilisation] the successive developments of which carried in all parts of the ancient world] and even beyond] the blessings of knowledge which is the second life of man] that country assuredly is India"

– J. beatie :Civilisation and Progress

अर्थात्– यदि कोई देश वास्तव में मनुष्य–जाति का पालक होने अथवा उस आदिसभ्यता का, जिसने विकसित होकर संसार के कोने–कोने में ज्ञान का प्रसार किया, स्रोत होने का दावा कर सकता है, तो निश्चय ही वह देश भारत है।

इसी आर्यावर्त्त का नाम ही ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मर्षि देश से भी प्रसिद्ध है (देखो– मनु० २/१७–२२ एवं पातंजल–व्याकरण–महाभाष्य २/४/१० व ६/३/१०६)। वैदिक शिक्षा के प्रभाव से इस देश के राजाओं में किसी प्रकार का कोई दुराचार विद्यमान नहीं था इसलिए इनकी प्रजा इनसे अत्यन्त प्रसन्न व सन्तुष्ट रहती थी। हम अपने पक्ष में पाठकों के समक्ष महाभारत (अनुशासन पर्व, अध्याय १६५) में आए चक्रवर्ती राजाओं के कुछ नामों व उनकी राज्य–व्यवस्था का उल्लेख करेंगे–

१. ***महाराजा मरुत्त***– राजा मरुत्त जब इस पृथिवी का शासन करते थे उस समय यह पृथिवी बिना जोते–बोए ही अन्न पैदा करती थी और समस्त भूमण्डल में देवालयों की माला–सी दृष्टिगोचर होती थी जिससे इस पृथिवी की बड़ी शोभा बनी हुई थी।

(द्रोणपर्व ५५/४४)

२. ***महाराजा सुहोत्र***– राजा सुहोत्र को पाकर पृथिवी का वसुमती नाम सार्थक हो गया था। जिस समय वे जनपद के स्वामी थे उन दिनों वहां की नदियां अपने जल के साथ सुवर्ण बहाया करती थीं। ***(द्रोणपर्व ५६/६)***

३. ***महाराजा शिवि*** — औशीनर के सुपुत्र शिवि ने इस सम्पूर्ण पृथिवी को चमड़े की भांति लपेट लिया था, अर्थात् सर्वथा अपने आधीन कर लिया था। वह अपने रथ की ध्वनि से पृथिवी को प्रतिध्वनित करते हुए एकमात्र विजयशील रथ के द्वारा इस भूमण्डल को एकछत्र शासन करते थे। आज संसार में जंगली पशुओं सहित जितने गाय, बैल, और घोड़े हैं उतनी संख्या में उशीनर—पुत्र शिवि ने अपने यज्ञ में केवल गौओं का दान किया था। प्रजापति ब्रह्मा ने इन्द्र के तुल्य पराक्रमी उशीनर—पुत्र राजा शिवि के सिवाय सम्पूर्ण राजाओं में भूत या भविष्यकाल के किसी राजा को ऐसा सम्मान नहीं दिया जो शिवि का कार्यभार वहन कर सकता हो। ***(द्रोणपर्व ५८/१,२,६,७,८)***

४. ***सम्राट् भरत*** — दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र महाधनी, महामनस्वी, महातेजस्वी भरत ने पूर्व—काल में देवताओं की प्रसन्नता के लिए यमुना के तट पर तीन सौ, सरस्वती के तट पर बीस और गंगा के तट पर चौदह अश्वमेध यज्ञ किए थे। जैसे मनुष्य दोनों भुजाओं से आकाश को तैर नहीं सकते, उसी प्रकार सम्पूर्ण राजाओं में भरत का जो महान् कर्म है उसका दूसरे राजा अनुकरण न कर सके। ***(द्रोणपर्व ६८/८,६)***

५. ***पुरुषोत्तम राम*** — श्रीराम अपनी प्रजा पर वैसी ही कृपा रखते थे जैसे पिता अपने औरस पुत्रों पर रखता है। उनके राज्य में कोई भी स्त्री अनाथ, विधवा नहीं हुई। श्रीराम ने जब तक राज्य का शासन किया तब तक वे अपनी प्रजा के लिए सदा ही कृपालु बने रहे। मेघ समय पर वर्षा करके खेती को अच्छे ढंग से सम्पन्न करता थाय उसे बढ़ने—फलने—फूलने का अवसर देता था। राम के राज्य—शासनकाल में सदा सुकाल ही रहता था, कभी अकाल नहीं पड़ता था। राम के राज्य—शासन करते समय कभी कोई प्राणी जल में नहीं डूबता था, आग अनुचितरूप से कभी किसी को नहीं जलाती थी तथा किसी को रोग का भय नहीं होता था। स्त्रियों में भी परस्पर विवाद नहीं होता था, फिर पुरुषों की तो कथा ही क्या! श्रीराम के राज्य—शासनकाल में समस्त प्रजाएँ सम—धर्म में तत्पर रहती थीं। श्री रामचन्द्र जी जब राज्य करते थे उस समय सभी मनुष्य सन्तुष्ट, पूर्णकाम, निर्भय, स्वाधीन और सत्यव्रती थे। सभी वृक्ष बिना किसी विघ्न—बाधा के सदा फले—फूले रहते थे और समस्त गौएँ एक—एक द्रोण दूध देती थीं। महातपस्वी श्रीराम ने चौदह वर्षों तक वन में निवास करके राज्य पाने के उपरान्त दस ऐसे अश्वमेध यज्ञ किये जो सर्वथा स्तुति के योग्य थे तथा जहां किसी भी याचक के लिए दरवाजा बन्द नहीं होता था। श्री राम नवयुवक और श्याम—वर्णवाले थे। उनकी आंखों में कुछ—कुछ लालिमा शोभा देती थी। वे यूथपति गजराज के समान शक्तिशाली थे। उनकी बड़ी—बड़ी भुजाएं घुटनों तक लम्बी थीं। उनका मुख सुन्दर और कन्धे सिंह के समान थे। ***(द्रोणपर्व, अध्याय ५६)***

६. ***महाराजा भगीरथ*** — महाराजा भगीरथ जिनके नाम पर गंगा को भागीरथी कहते हैं, तट के समीप निवास करते समय गंगाजी राजा भगीरथ के प्रताप से भारतवर्ष की ओर बहने लगी। विप्रपथगामिनी गंगा ने पुत्री—भाव को प्राप्त होकर पर्याप्त दक्षिणा देनेवाले इक्ष्वाकु—वंशी यजमान भगीरथ को अपना पिता माना। ***(द्रोणपर्व ६०/१,६,८)***

७. ***महाराजा दिलीप*** — एकाग्रचित हुए महाराजा दिलीप ने एक महायज्ञ में रत्न और धन से परिपूर्ण पृथिवी के बहुत बड़े भाग को ब्राह्मणों को दान कर दिया था। उनके यज्ञ में सोने का बना हुआ यूप शोभा पाता था। यज्ञ करते हुए इन्द्र आदि देवता सदा उसी यूप का आश्रय लेकर रहते थे। उनके यज्ञ में साक्षात् विश्वावसु बीच में बैठकर सात—स्वरों के अनुसार वीणा बजाया करते थे। उस समय सभी प्राणी यही समझते थे कि ये मेरे ही आगे बाजा बजा रहे हैं।

(द्रोणपर्व ६१/२,३,५,७)

८. ***महाराजा मान्धाता*** — इसी प्रसङ्ग में महाराजा मान्धाता का वर्णन इस प्रकार है कि वे बड़े धर्मात्मा और मनस्वी थे। युद्ध में इन्द्र के समान शौर्य प्रकट करते थे। यह सारी पृथिवी एक ही दिन में उनके अधिकार में आ गई थी। मान्धाता ने समराङ्गण में राजा अङ्गार, मरुत्त, असित, गय तथा अङ्गराज बृहद्रथ को भी पराजित कर दिया था। मान्धाता ने रणभूमि में जिस समय राजा अङ्गार के साथ युद्ध किया था, उस समय देवताओं ने ऐसा समझा था कि उनके धनुष की टंकार से सारा आकाश ही फट गया है। ***(द्रोणपर्व ६२/६,१०)***

उनके राज्य के विस्तार में कहा गया –

यत्र सूर्य उदेति स्म यत्र च प्रतितिष्ठति।
सर्वं तद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते।।
(द्रोणपर्व ६२/११)

जहां से सूर्य उदय होते हैं वहां से लेकर जहां अस्त होते हैं वहां तक का सारा क्षेत्र युवनाश्व–पुत्र मान्धाता का ही राज्य कहलाता था।

१०. *महाराजा अम्बरीष*– नृपश्रेष्ठ महाराज अम्बरीष को सारी प्रजा ने अपना पुण्यमय रक्षक माना था। ब्राह्मणों के प्रति अनुराग रखनेवाले राजा अम्बरीष ने यज्ञ करते समय अपने विशाल यज्ञ–मण्डप में शतशः राजाओं को उन ब्राह्मणों की सेवा में नियुक्त किया था, जो स्वयं भी हजारों यज्ञ कर चुके थे। उन यज्ञ–कुशल ब्राह्मणों ने नाभाग–पुत्र अम्बरीष की सराहना करते हुए कहा था कि ऐसा यज्ञ न तो पहले के राजाओं ने किया और न ही भविष्य में होनेवाले करेंगे।

(द्रोणपर्व ६४/१२,१५,१६)

११. *महाराजा शशबिन्दु*– इसी प्रकार चित्ररथ के पुत्र शशबिन्दु, अमूर्त्तरथा के पुत्र राजा गय और संकृति के पुत्र राजा रन्तिदेव थे। शशबिन्दु के राज्यकाल में यह पृथ्वी हृष्ट–पुष्ट मनुष्यों से भरी थी। यहां कोई विघ्न बाधा और रोग–व्याधि नहीं थी (द्रोणपर्व ६५/११)। राजा गय ने अश्वमेध नामक महायज्ञ में मणिमय रेत वाली सोने की पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणों को दान की थी (द्रोणपर्व ६६/११)। राजा रन्तिदेव ब्राह्मणों को 'तुम्हारे लिए, तुम्हारे लिए' कहकर हजारों सोने के चमकीले निष्क दान किया करते थे। ***(द्रोणपर्व ६७/४,५)***

१२. *महाराजा पृथु* – वेन के पुत्र महाराज पृथु का भी महर्षियों ने महान् वन में एकत्र होकर उनका राज्याभिषेक किया था। ऋषियों ने यह सोचकर कि सब लोकों में धर्म की मर्यादा प्रथित करेंगे, स्थापित करेंगे, उनका नाम पृथु रखा था। क्षत अर्थात् दुःख से सबका त्राण करते थे इसलिए क्षत्रिय कहलाए। वेन–नन्दन पृथु को देखकर समस्त प्रजाओं ने एक–साथ कहा कि हम इनमें अनुरक्त हैं। इस प्रकार प्रजा का रञ्जन करने के कारण ही उनका नाम राजा हुआ। पृथु के शासनकाल में पृथिवी बिना जोते ही धान्य उत्पन्न करती थी। वृक्षों के पुट–पुट में मधु भरा था और सारी गौएँ एक–एक द्रोण दूध देती थीं। मनुष्य नीरोग थे, उनकी सारी कामनाएं सर्वथा परिपूर्ण थीं, उन्हें कभी किसी से कोई भय न था। सब लोग इच्छानुसार घरों में या खेतों में रह लेते थे। जब वे समुद्र की ओर यात्रा करते थे उस समय उसका जल स्थिर हो जाता था, नदियों की बाढ़ समाप्त हो जाती थी, उनके रथ की ध्वजा कभी भग्न नहीं होती थी।

(द्रोणपर्व ६९/२,३,४,६,७,८,९)

सन्दर्भ ग्रन्थ–

सत्यार्थ भास्कर–स्वामी विद्यानन्द एवं महाभारत

निरभिमानी पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी

२७ नवंबर १८८७ में आर्यसमाज लाहौर का दशम वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा था। पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी के दो अद्भुत प्रभावशाली भाषण वहाँ हुए।

लाला जीवनदास उस भाषण से इतना प्रभावित हुए की सभास्थल पर ही अनायास उनके मुख्य से निकल पड़ा – ***गुरुदत्त जी ! आज तो आपने ऋषि दयानन्द से भी अधिक योग्यता प्रदर्शित की है।***

परन्तु निरभिमानी ऋषिभक्त विद्यार्थी ने झटपट उत्तर दिया – ***यह सर्वथा असत्य है। पाश्चात्य विज्ञान जहाँ समाप्त होता है, वैदिक विज्ञान वहाँ से प्रारम्भ होता है और ऋषि के मुकाबले मैं तो सौंवां भाग भी विज्ञान नहीं जानता।***

महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने भी यह भाषण सुना था। वे लिखते हैं – ***मुझे सुधि न रही कि मैं पृथ्वी पर हूँ।***

– (स्रोत : विषवृक्ष, पृ. ३८–४०**)**

कहां है मेरा आर्यसमाज ?

पार्थिवता का ढोल गूंजता,
सिर चढ़कर पाखंड बोलता।
भगवानों के इस प्लावन में,
ईश्वर निज अस्तित्व ढूंढता।
उल्टी गंगा बहे कर्म की,
कौन बचावे आज।। **कहां है मेरा०**

धर्म बिक रहा बाजारों में,
प्रतिदिन नूतन अवतारों में।
भक्ति बदलती फैशन इतने,
सुर्खी बनती अखबारों में।
व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं मंदिर,
बने कोढ़ में खाज।। **कहां है मेरा०**

भिखमंगों से संत घूमते,
धनदाता के चरण चूमते।
मिथ्या व्यर्थ कथाएं कहकर,
नादानों का द्रव्य लूटते।।
हंसों के दल हवा हो गए,
बचे हैं कौए बाज।। **कहां है मेरा०**

वेद पठन अब ठप्प पड़ा है,
गुरुकुल का ढांचा बिगड़ा है।
संस्थाओं के युद्ध क्षेत्र में,
धरा-धाम-धन का झगड़ा है।।
कुत्ते और भेड़ियों के सिर,
बांध दिए हैं ताज।। **कहां है मेरा०**

बदल गई पर्वो की पद्धति,
कर्मकांड की हो रही दुर्गति।
कौन भला शास्त्रार्थ करे अब,
जब शास्त्रों में नहीं रही रति।।
भूलगए गौरव पुरखों का,
गिरी अक्लपर गाज।। **कहां है मेरा०**

ये तो बस चंद उदाहरण हैं,
जो इस नाकामी के कारण हैं।
जलती संस्कृति, जलता समाज,
क्या कोई इसका तारण है।।
ऐसा न हो ये नस्लें पूछें,
होकर हमसे नाराज।। **कहां है मेरा०**

– वेद कुमार दीक्षित

हो ली होली देश में

उस अतीत सन्देश में, अमर शहीदी वेश में।
बीत चुके सब गीत क्रान्ति के, अब क्या रक्खा शेष
में... हो ली होली देश में ।।१।।

फिरती थीं नर वेश बनाकर, जब नारी वीरांगना।
दानवता को पड़ा सदा ही, भीख प्राण की मांगना।
दुर्गा, लक्ष्मी के देश में, हिजड़ों के परिवेश में,
घूम रहे नवयुवक सभी तो, अब क्या रक्खा शेष में।
हो ली होली देश में ।।२।।

बने राम आरामतलब, अब कहीं न जलनिधि तरण
हो रहा।
षडयन्त्रों से सौमित्रों के, सीताओं का हरण हो रहा।
भक्षक ही रक्षक का, सुन्दर स्वांग बनाए फिरते हैं।
महावीर हनुमान वेश में, क्लीव कुलीन विचरते हैं।
प्राणों के अवशेष में, आलिंगन आवेश में,
नहीं पतित पावन ही, तो फिर अब क्या रक्खा
शेष में... हो ली होली देश में ।।३।।

अब वैज्ञानिक चकाचौंध में, कोई किसी का सगा नहीं।
पक्के रंग उड़ गए कहीं भी, पता किसी का लगा
नहीं।
अर्थवाद के मोहक युग में, अर्थ स्वयं भगवान बन
गया।
प्रीति प्यार, नय नीति न्याय, सद्धर्म और सद्ज्ञान
खो गया।
ऋषियों के सन्देश में, और धर्म उपदेश में,
आस्था ही रह सकी नहीं, फिर अब क्या रक्खा
शेष में...हो ली होली देश में ।।४।।

धरती और गगन सा अन्तर,व्यापक है हमजोली में।
एक कमेरा एक लुटेरा, अन्तर भी है बोली में।
एक विना रंग रंगा,एक के रंग अबीर न झोली में।
पीले मुख हो सकें लाल, यह शक्ति न अब रंग रोली
में।
भरत, राम इस देश में, धनिक श्रमिक के वेश में,
बने आज औरंगजेब, फिर अब क्या रक्खा शेष में
हो ली होली देश में ।। ५ । ।

– वेदप्रिय शास्त्री

बलिदान दिवस पर विशेष

बलिदान – २३ मार्च १९३१

क्रान्तिकारी भगत सिंह

– प्रांशु आर्य

संसार एक विशाल रणस्थली है। यहां सदैव संघर्ष रहा है। संसार का इतिहास संघर्ष का इतिहास है। जो व्यक्ति, जो समाज, जो राष्ट्र संसार समर में कमर कस कर जूझने व मिटने के लिए तैयार नहीं होते वे इतिहास के गर्भ में खो जाया करते हैं। किसी कवि ने बड़े ओजस्वी स्वर में लिखा है –

जिसे दुनिया कहते हैं ऐ दुनिया वालो !
यह रणक्षेत्र है कोई महफिल नहीं है,
हथेली में सर जिसका हो इसमे कूदे ।
यह दरिया है वो जिसका साहिल नहीं है ।।

संसार के इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि यहां अच्छे और बुरे, न्याय और अन्याय करने वाले, सदाचारियों और दुराचारियों, पोषकों और शोषकों के बीच सदैव ही संघर्ष रहा है। विश्व के समस्त देशों ने इन्हीं संघर्षों के बीच में अपने को विकसित किया है। अन्याय, अत्याचार, परस्वहरण करने वाले शोषकों, लुटेरों की क्रूरता, निरंकुशता छल–कपट ने जब–जब अपनी चरम सीमा को पार किया है, जनता तिलमिला उठी है और तब–तब अपने अस्तित्व व आत्मरक्षा के लिए एवं दमनकारी शासकों को उखाड़ फेंकने के लिए वृहद् स्तर पर जनता ने बिगुल फूँके हैं जिसे क्रान्ति कहा जाता है।

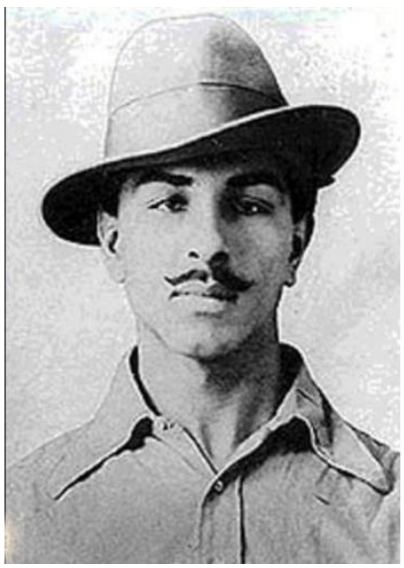

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है – ***जब बदलाव धीरे–धीरे आता है तो उसे विकास कहते हैं और जब बदलाव तेजी से आता है तो उसे क्रान्ति कहते हैं।*** क्रान्ति के बिना शांति स्थापित नहीं हो सकती और देश, समाज में शांति की स्थापना करना ही क्रांतिकारियों का काम होता है। किन्तु क्रान्ति का अर्थ तोड़–फोड़, धरने या हत्याएँ करना नहीं होता उसके पीछे एक दर्शन, एक विचार व परिवर्तन की एक स्पष्ट रूपरेखा होती है।

क्रांति का अर्थ है ***'क्रमु पाद विक्षेपे'*** अर्थात् आगे चलना। जब कभी गति चक्र रुक जाए तो उस अवरुद्ध गति चक्र को आगे बढ़ाना, आगे चलाना ही क्रांति कहलाती है। क्रांति भी दो प्रकार की होती है – एक वैचारिक क्रांति और दूसरी शारीरिक अथवा सशस्त्र क्रांति। किन्तु वैचारिक क्रांति के बिना सशस्त्र क्रांति का कोई अर्थ नहीं होता। सशस्त्र क्रांति की अपेक्षा वैचारिक क्रांति ही सदैव प्रभावशाली व चिरस्थाई होती है। इसमें भी मुख्य बात यह है कि इन दोनों प्रकार की क्रांतियों को केवल वे ही लोग कर सकते हैं जिनमें अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध आक्रोश व विद्रोह करने की क्षमता व साहस हो। और ऐसे साहसी व क्रांति के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वालों को ही क्रांतिकारी कहा जाता है और ऐसे ही सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी थे ***सरदार भगत सिंह***। जिन्होंने अपनी छोटी सी आयु में ही अपने अदम्य साहस से बर्बर ब्रिटिश सरकार की नींव हिला कर समूचे देश में क्रांति मचा दी थी। भगत सिंह भी वैचारिक क्रांति के पक्षधर थे। अदालत में जब उनसे पूछा गया कि क्रांति से उनका क्या मतलब है ? तब इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि – ***क्रांति का मतलब केवल खूनी लड़ाइयां या वैयक्तिक वैर निकालना नहीं है । और न बम अथवा पिस्तौल का प्रयोग करना ही उसका एकमात्र उद्देश्य है । क्रांति से हमारा अभिप्राय केवल उस अन्याय को समूल नष्ट कर देना है, जिसकी भित्ति पर वर्तमान शासन–प्रणाली का निर्माण हुआ है।***

भारत के इस वीर क्रांतिकारी का जन्म 27 सितंबर 1907 को लायलपुर जिले के बंगा नामक स्थान (वर्तमान में पाकिस्तान) पर हुआ था। आप बचपन से ही क्रांतिकारी स्वभाव के थे। आपके विचार बचपन से

ही क्रांतिकारी थे। आपको ये क्रांति के विचार व संस्कार विरासत में अपने पुरखों से मिले थे। आपके पिता सरदार किशन सिंह देश की स्वतंत्रता के लिए जीवन भर जेलों की कठिन यातनाएं सहते रहे। आप को जन्म देने वाली वीरांगना माता विद्यावती देवी थी जो जीवन भर अनेक कष्टों को सहती हुई भी आपका और आपके परिवार का पालन पोषण करती रही। आपके मंझले चाचा सरदार अजीत सिंह बहुप्रतिभाशाली राष्ट्रभक्त एवं क्रांतिकारी थे। देश की आजादी के लिए वे 40 वर्षों तक विदेशों में रहकर लोगों को संगठित करने का कार्य करते रहें और देश को स्वतंत्र कराने के पश्चात् ही स्वदेश लौटे। आप के सबसे छोटे चाचा स्वर्णसिंह जी भी अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए युवावस्था में ही बलिदान हो गए।

आपके परिवार के मुखिया आपके दादा सरदार अर्जुन सिंह जी देशभक्त व धुन के धनी व्यक्ति थे। आपके परिवार में क्रांति की धुन आपके दादा सरदार अर्जुन सिंह जी ने ही जगायी थी और आपके दादा जी के अन्दर यह क्रांति की धुन जगाने वाले आधुनिक भारत के निर्माता, क्रांति व शांति दोनों धाराओं के जनक एवं आर्यसमाज के संस्थापक ***महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती थे।*** महर्षि दयानंद के संपर्क में आने के बाद, उनके उपदेशों का आपके दादा सरदार अर्जुन सिंह जी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह समस्त अंधविश्वासी और रूढ़िवादी मान्यताओं को छोड़कर कट्टर आर्य समाजी बन गए। आर्य समाज से इतर इस बात को भी कम ही लोग जानते हैं कि सरदार अर्जुनसिंह जी का यज्ञोपवीत संस्कार स्वयं ऋषि दयानंद ने अपने कर कमलों से किया था और अपने पौत्र भगत सिंह का यज्ञोपवीत संस्कार उन्होंने आर्य समाजी विद्वान् पंडित लोकनाथ तर्कवाचस्पति से करवाया था और भगत सिंह को पढ़ाने के लिए आर्य समाजी विद्वान् उदयवीर शास्त्रीजी को नियुक्त किया था। इतना ही नहीं सरदार अर्जुन सिंह जी पर आर्य समाज का जादू ऐसा चढ़ा कि वह घूम–घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार व शास्त्रार्थ करने लगे। गुरु ग्रन्थ साहब की पोथी को मत्था टेकने के स्थान पर हवन करने लग गए। वे न सिर्फ स्वयं ही आर्य समाजी रंग में रंगे अपितु उन्होंने अपने पूरे परिवार को आर्य समाजी संस्कारों में रंग दिया। आर्य समाज एक क्रांतिकारी आंदोलन है, इस बात को वे गहराई तक समझ चुके थे और इसीलिए इस क्रांति रथ को आगे बढ़ाने के लिए वह अपने पूरे परिवार के साथ इसमें कूदे। क्रांति के इस यज्ञ में हवनकुंड वे स्वयं ही बने। अपने तीनो पुत्रों सरदार किशन सिंह, अजित सिंह और स्वर्ण सिंह को समिधा बनाकर इस हवन कुंड में प्रवेश करवाया। बड़े पौत्र जगत सिंह से इस कुंड में अग्नि प्रज्वलित करवाई और इस प्रज्वलित अग्नि को ऊपर उठाने के लिए भगत सिंह ने इस हवनकुंड में अपनी आहुति दी और ऐसी आहुति दी जिसने देश में क्रांति के सैकड़ों जलते हुए हवन कुंड तैयार कर दिए।

पाठको ! यह भगत सिंह की पारिवारिक पृष्ठभूमि की वह झलक है जिसे आज तक एक सुनियोजित षड्यंत्र के तहत देशवासियों से छुपाया गया है। कम्युनिस्टों द्वारा भगत सिंह के लघु लेख ***मैं नास्तिक क्यों हूँ*** के आधार पर उनके नास्तिक होने का तो खूब प्रचार किया गया किन्तु उनके परिवार का आर्य सामाजी सिद्धांतों व संस्कारों से ओत–प्रोत होने को पूरी तरह से लोगो के सामने आने से दबाया गया जो वास्तव में भगत सिंह के क्रांतिकारी विचारों का मूल है। याद रखिए जो संस्कार बालक को बचपन में मिलते हैं उसी पर ही उसके भावी जीवन की नींव शिला टिकी होती है। यह ठीक है कि लेनिन आदि का साम्यवादी साहित्य पढ़ने के बाद उनके विचारों में काफी हद तक परिवर्तन आया था तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनके जीवन कार्यों व विचारों के मूल में, उनको घर से मिले संस्कार व ऋषि दयानन्द की प्रेरणा ही काम कर रही थी।

भगत सिंह के क्रांतिकारी जीवन में दो घटनाएं विशेष एवं ऐतिहासिक रही है जिनका उनकी फांसी से गहरा सम्बन्ध रहा। प्रथम तो 30 अक्टूबर सन् 1930 में जब साइमन कमीशन लाहौर पहुंचा तब लाला लाजपतराय के नेतृत्व में उसका बहिष्कार किया गया। प्रदर्शनकारियों और पुलिस में मुठभेड़ हुई। क्रूरता की हदें पार करते हुए निहत्थे लालाजी पर पुलिस द्वारा बर्बर लाठियां बरसाई गईं जिसके परिणामस्वरूप 17 नवंबर 1928 के दिन लाला जी का बलिदान हो गया। इस बलिदान ने सारे देश को आक्रोशित कर दिया। भगत सिंह और उनके साथियों ने बदला लेने की

ठानी। पुलिस सुपरिटेंडेंट स्कॉट की हत्या करने की योजना बनाई गई किन्तु चूंक से मारा गया सांडर्स। अगले दिन लाहौर शहर की दीवारों पर पर्चे चिपके मिले, जिस पर मोटे अक्षरों में लिखा था – 'सांडर्स मारा गया, लाला जी का बदला लिया गया।'

प्रश्न उठ सकता है कि जब क्रांति का अर्थ हत्या करना नहीं होता तो फिर सरदार भगत सिंह ने और उनके साथियों ने ये हत्या क्यों की ? उत्तर यह है कि ये हत्या आवश्यक थी। क्योंकि जब शासक क्रूर व जालिम हो जाए, अपने नस्ली अहंकार के मद में चूर होकर अपने को मालिक और जनता को नौकर से भी बद्तर समझने लगे, उनकी आवाज को दबाने के लिए साम–दाम–दंड–भेद की नीति अपनाकर उनहें कुचलने लगे तब क्रांति की मशाल को जलाए रखने के लिए भगत सिंह जैसे क्रांतिकारियों के समक्ष एक ही रास्ता रह जाता है कि शासन करने वाले ऐसे क्रूर भेड़ियों का वध कर दिया जाए और क्रांति की मशाल को दूसरे तक पहुंचाने के लिए रास्ता बनाया जाए। शास्त्रकारों ने भी कहा है – ***न आततायी वधे दोषः।*** अर्थात् आततायी, अत्याचारी का वध करने में कोई दोष, कोई पाप नहीं।

द्वितीय घटना तब घटी जब जालिम अंग्रेजों द्वारा इस देश के गरीब किसानों–मजदूरों की आवाज को कुचलने के लिए दो बिल लाने का निर्णय लिया गया पहला पब्लिक सेफ्टी और दूसरा ट्रेड डिस्प्यूट बिल। देश के अलग–अलग हिस्सों में इस बिल का विरोध होने लगा लेकिन पुनः अहंकार के मद में चूर अंग्रेज भारतीयों की आवाज सुनने को तैयार न थे। ऐसे में भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, चंद्रशेखर आजाद, बटुकेश्वर दत्त व उनके अन्य साथी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गोरों की जात बहरी है और बहरों को सुनाने के लिए धमाके की जरूरत होती है। इसी के परिणामस्वरूप बहरी अंग्रेज सरकार को सुनाने के लिए 8 अप्रैल 1929 को असेंबली हॉल में खाली स्थान को देखकर भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने बम फेंक दिए और इंकलाब जिंदाबाद के नारे के साथ स्वयं ही अपनी गिरफ्तारी दी। वस्तुतः बम फेंकने का उद्देश्य किसी की जान लेना नहीं था। वे बम भी केवल धुआं छोड़ने व आवाज करने वाले ही थे। किन्तु बम फेंकने के पीछे जो भगत सिंह का उद्देश्य था वे उसमें सफल हुए क्योंकि इस धमाके की गूंज पूरे देश में सुनी गई। इस धमाके की आवाज ने बहरी अंग्रेज सरकार के होश उड़ा दिए। भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त पर मुकदमा चलाया गया। अदालत की कार्रवाई शुरू हुई। भगत सिंह इसी अवसर की तलाश में थे। अदालत की कार्रवाई के दौरान अपने समस्त विचारों को अदालत में व देश की जनता के सामने रखते हुए अपने बयान में भगत सिंह ने कहा – ***यह काम हमने किसी व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा द्वेष की भावना से नहीं किया है; हमारा उद्देश्य केवल उस शासन व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिवाद प्रकट करना था जिसके हर एक काम में उसकी अयोग्यता ही नहीं वरन उसकी दुष्टता तथा निरंकुशता प्रकट होती है। इस विषय में हमने जितना विचार किया उतना हमें इस बात का दृढ़ विश्वास होता गया कि अब समय आ गया है जब संसार को दिखा दे कि भारत आज किस लज्जाजनक तथा असहाय अवस्था के बीच गुजर रहा है; इसके द्वारा हमें गैरजिम्मेदार तथा निरंकुश शासन की पोल भी खोलना चाहते थे।***

भगत सिंह के इन ओजस्वी विचारों ने सारे देश में क्रांति लाने का काम किया। देश का बच्चा–बच्चा भगतसिंह के नाम से परिचित हो गया और कुछ ही समय में भगत सिंह गांधी जी से भी अधिक लोकप्रिय हो गए।

इधर दूसरी ओर अंग्रेजी अदालतों में न्याय का नंगा नाटक चलता रहा। 24 मार्च 1931 के दिन तीनों अभियुक्तों भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु को फांसी देने का निर्णय हुआ। भगत सिंह के मन की हुई। वे चाहते भी यही थे कि उनको फांसी दी जाए। फांसी के कुछ दिन पूर्व जब उनके मित्र जयदेव कपूर जेल में उनसे मिलने पहुँचे और पूछा कि – क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि इस तरह असमय फांसी चढ़ जाने से आपका जीवन व्यर्थ चला जाएगा। इस बात का उत्तर देते हुए भगत सिंह ने कहा था कि – नहीं! मुझे ऐसा नहीं लगता। क्योंकि जेल की बैरक में बैठ कर के मैं सुन सकता हूँ कि इंकलाब जिंदाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद का जो नारा मैंने दिया है उसकी गूंज आज सारे देश में सुनाई दे रही है। ऐसा ही हुआ भी। फांसी का समाचार पूरे देश में आग की तरह फैला। नवयुवकों का रक्त उबलने लगा। सारे देश में

फांसी को रोकने के लिए आंदोलन, प्रदर्शन व धरने होने लगे। देश के जोश को देखकर अंग्रेज सरकार इतनी डर गई कि समय से पहले ही 23 मार्च 1931 को शाम 7 बजकर 33 मिनट पर तीनों क्रांतिकारियों को फांसी पर चढ़ा दिया। फांसी पर चढ़ते वक्त भगत सिंह और उनके साथियों ने इंकलाब जिंदाबाद का नारा लगाया और इस तरह मात्र 23 साल 5 महीने और 26 दिन की आयु में भगतसिंह भारत माता की गोद में सदा के लिए सो गया। फांसी से पूर्व उन्होंने अपनी जेल कोठड़ी में बैठकर लिखा था –

दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उल्फत,
मेरी मिट्टी से भी खुशबू–ए–वतन आएगी।

प्रिय पाठको ! इस देश की आजादी के लिए अनेकों क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों का बलिदान दिया किन्तु भगत सिंह का नाम अपना एक विशेष महत्व रखता है। उनके बलिदान के बाद उस समय के तत्कालीन अखबार People में उनके बारे में लिखा था – ''देश की स्वतंत्रता के लिए एक ही नहीं, बल्कि हजारों वीरों ने अपने प्राणों की बलि दी है ; हम भगत सिंह का नाम उन शहीदों में जोड़ कर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ सकते। भगत सिंह ही ऐसे शहीद हैं, जिन्होंने एक ही नहीं, हजारों देशवासियों के हृदय में स्थान कर लिया है। उनकी यह कुर्बानी, जब तक देश का एक भी बच्चा जीवित है, तब तक नहीं भुलाई जा सकती। कितने व्यक्ति ऐसे होंगे जो इस प्रकार हंसते–हंसते मृत्यु को अपना सकेंगे ? दो वर्ष के लंबे अरसे को सब प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए, अपने उत्साह को पहले ही की तरह कायम रखने वाले, शहीदों में भी कम ही मिलेंगे। केवल यौवन की क्षणिक उत्तेजना के वशीभूत होकर इस आदर्श को अपनाने वाले व्यक्ति, इतने लंबे समय तक इस प्रकार की अग्नि परीक्षा का सामना कर भी कैसे सकते थे ? भगत सिंह अदालती अपीलों तथा फांसी स्थगित कराने के प्रयास के समय भी उसी प्रकार उदासीन रहे, जिस प्रकार मुकदमे के समय में दिखाई देते थे। इसके लिए एक शहीद की हिम्मत तथा जीवन के प्रति किसी दार्शनिक की–सी उदासीनता की आवश्यकता थी। भगतसिंह में तो इन दोनों गुणों का अभाव न था।

लोगों के ख्याल से, जनता पर, भगत सिंह के इस आदर्श बलिदान से अधिक, हाल में होने वाली अन्य किसी घटना का प्रभाव नहीं पड़ा। अभी से उन्हें परंपरागत महापुरुषों में स्थान मिल गया है। भारतीय युवक समाज को उन पर गर्व है और यह है भी ठीक ही। उनका वह अदम्य उत्साह, उच्च आदर्श तथा किसी के आगे सिर न झुकाने वाली वह निर्भीकता, सदियों तक कितने ही पथभ्रष्ट लोगों को रास्ता दिखाएगी।

भगत सिंह के इस साहस तथा आत्म–बलिदान ने राजनैतिक वातावरण से घुसी जड़ता को दूर निकालने में बिजली का सा काम किया। उन्होंने 'इंकलाब जिंदाबाद' का नारा भारत के बच्चे–बच्चे के दिल में रमा दिया। उन्होंने यह नारा ब्रिटिश अदालतों में सबसे पहले लगाया था, उसी का परिणाम यह है कि आज यह नारा भारत की गली–गली में सुनने में आ रहा है। यह सच है कि भगत सिंह हमारे बीच में नहीं है परन्तु भारतीय जनता जब भी 'इंकलाब जिंदाबाद' का नारा लगाती है तो इसमें 'भगत सिंह जिंदाबाद' का स्वर भी तो छिपा रहता है।''

ऐसे वीर बलिदानी, आदर्श क्रांतिकारी भगत सिंह के बलिदान दिवस पर हम उन्हें शत्–शत् नमन करते हैं।